लगभग जीवन

शिक्षा विभाग राजस्थान
के लिये

सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बिस्सों का चौक, बीकानेर

लगभग जीवन

सम्पादक
लीलाधर जगूड़ी
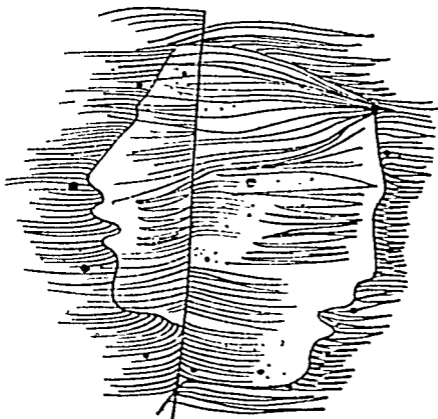
द्वितीय संस्करण 1982

शिक्षक दिवस के अवसर पर

प्रकाशक : शिक्षा विभाग राजस्थान के लिये सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर / मुद्रक : शाइन आफसेट प्रिन्टर्स दिल्ली-३२ / प्रथम संस्करण : ५ सितम्बर १९७९ / आवरण : सुकुमार चटर्जी / मूल्य : नौ रुपये चौंसठ पैसे

LAGBHAG JEEVAN (A Collection of Hindi Poetry)

Edited by : Leeladhar Jagudi

Price Rs. 9.64 P.

आमुख

मेरे विचार में अब विभाग की शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना का परिचय देने की आवश्यकता नहीं रही है। इस सुपरिचित योजना के अन्तर्गत प्रकाशित शिक्षक रचनाकारों की साहित्यिक कृतियों का सर्वत्र स्वागत हुआ है और देश की शीर्षस्थ पत्र-पत्रिकाओं में इन प्रकाशनों की चर्चा हुई है। प्रसन्नता का विषय है कि साहित्य सृजन को गति देने में राजस्थान ने अन्य राज्यों के समक्ष एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

योजना के प्रारम्भिक वर्षों में प्रयत्न यह रहा कि शिक्षक साहित्यकारों की सर्जनात्मक प्रतिभा को प्रकाश में लाया जाय। एक सीमा तक विभाग का यह प्रयास सफल रहा है। वस्तुतः शिक्षक दिवस प्रकाशनों ने राज्य में शिक्षक साहित्यकारों की एक पीढ़ी तैयार की है। राज्य के इन अग्रणी रचनाकारों ने नई-नई विधाओं और शैलियों में नये-नये प्रयोग किये हैं और अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा को अभिव्यक्ति दी है। इनकी रचनाओं ने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान कायम की है। अब आवश्यकता यह है कि अधिकाधिक संख्या में नये-नये लेखक इन प्रकाशनों से प्रेरित होकर अपनी लेखन प्रतिभा को विकसित करें।

शिक्षक दिवस प्रकाशनों को पल्लवित, पुष्पित करने में देश के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। समय समय पर हमारे अनुरोध पर इन प्रख्यात साहित्यकारों ने प्रकाशनों का सम्पादन-दायित्व वहन कर अंकुरित होते रचनाकर्मियों का मार्ग प्रशस्त किया।

आज तक इस योजना के अन्तर्गत कुल इकसठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। संख्यात्मक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

इस वर्ष के पाँच प्रकाशन और उनके संपादक हैं—

१. एक कदम आगे (कहानी संकलन) : संपा० ममता कालिया
२. लगभग जीवन (कविता संकलन) : संपा० लीलाधर जगूड़ी
३. जीवन यात्रा का कोलाज/नं० ?
(निबंध संकलन) : संपा० डॉ० जगदीश जोशी
४. कोरणी कलम री
(राजस्थानी संकलन) : संपा० अन्नाराम सुदामा
५. यह किताब बच्चों की
(बाल साहित्य) : संपा० डॉ० हरिकृष्ण देवसरे।

सम्पादकों को अपनी अपनी विधाओं में महारत हासिल है। इन यशस्वी सम्पादकों ने अल्पावधि में ही ढेर सारी रचनाओं में से चयन कर संपादन किया इसके लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। मुझे विश्वास है इनके द्वारा संपादित प्रकाशनों का पाठक स्वागत करेंगे।

बच्चों के लिए एक अलग पुस्तक प्रकाशित किया जाना इस वर्ष के प्रकाशनों की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। विश्वास है बच्चों को बाल वर्ष में अपने अध्यापकों की यह सौगात पसंद आयेगी।

मैं सभी रचनाकारों को, जिनकी रचनाएँ इन प्रकाशनों के लिए चुनी गई अथवा नहीं भी चुनी गई, बधाई देता हूँ क्योंकि सभी के सम्मिलित प्रयास से ही इन पुस्तकों का प्रकाशन संभव हो सका है। पुस्तकों के प्रकाशक का भी मैं आभारी हूँ।

अनिल बोर्दिया
निदेशक, प्राथमिक एवं माध्यमिक
शिक्षा राजस्थान, बीकानेर

असली आधार की ओर

मैं समझता हूँ कवि होना—लोहार, लमोटे, कारखाने के कारीगर या किसी भी वर्कशॉप में काम करने वाले कुशल शिल्पी से ज्यादा श्रेष्ठ नहीं है; पर इतना फर्क अवश्य है कि कवि स्वयं के अनुभवों पर प्रशिक्षित होता है, जबकि कारीगर की सामाजिक दबावों से होती है। कारीगर एक सांचा बनाता है, जबकि कवि तोड़ता है। कारीगर धातु के रद्दी से रद्दी टुकड़े का भी बढ़िया से बढ़िया कुछ बनाना चाहता है; वह चीजों की आकृतियाँ बदल देता है। इसी तरह कवि भी रद्दी से रद्दी शब्द को अपने किसी अनुभव की विशिष्टता के लिए महत्वपूर्ण बना देता है। शब्दों को उनके प्रचलित अर्थों से मुक्ति देकर उनके अर्थपूर्ण चेहरों को नये सिरे से गढ़ता है।

इस प्रकार अपने को हर वस्तु से जोड़ने का संघर्ष; अपने को हर ज्वार में डोंगा पर अपने निष्कर्षों से भाषा के एक द्वीप—(परिवर्तनों की पछाड़ में जिसका टिकना हर क्षण संदिग्ध बना रहता है)—की रचना का जोखिम; कुल मिला कर कवि अपनी समूची जिन्दगी को ही एक वर्कशॉप बना देता है। ऐसी वर्कशॉप, जिसकी न कोई दीवार है, न कोई छत। जिसकी जमीन भी केवल वही जमीन है, जिसे लोग अपने नाम मंजूर कराये हुए रहते हैं।

यही वजह है कि हाल के वर्षों मे कविता बोल चाल पर उतर आयी है। कविता, वक्तव्य और आत्मालाप से गुजरती हुई सार्थक संवाद मे बदल गयी है। गढ़ी हुई भाषा और कमायी हुई भाषा का फर्क इसी मुहाने पर स्पष्ट होता है। क्योंकि जनभाषा जब कविता की ज़मीन बनती है तब उसमें अधिक स्वाभाविकता आ जाने से, रूढ़ भाषा के अभ्यासी व्याख्याताओं को वह काव्य के विपरीत लगने लगती है।

वस्तुतः शास्त्र और शासन दोनों के ख़िलाफ आज कविता की भाषा बहुत नीचे आ गयी है। बहुत नीचे—जहाँ जड़ें होती हैं और अंधेरे का भयानक दबाव होता है। इसीलिए आज की कविता मे शैलियाँ कम और मनोवृत्तियों के मार्ग ज्यादा हैं। क्योंकि इस बीच जितने रचनाकार अस्तित्व मे आये, वे सब फटीचर आर्थिक संसार तथा भ्रष्टाचार की बगल मे जम्हाई लेते, टूटे-फूटे बेसिक स्कूलों में सीखी वर्णमाला के मार्फत आये हैं। याने कि जिनकी भाषा, सौभाग्य से, कही भी शास्त्र पीडित नही है। इस बीच यह भी हुआ है कि कविता को युवा लोगो ने आत्म सुख और यश कामना को लेकर नही बल्कि विरोध के लिये रचा। इसलिए आज कविता की भाषा केवल वस्तुस्थिति की ही नही बल्कि लड़ाई की भी भाषा है। समूह के असंतोष को हरेक शब्द एक व्यूह में बदलने की तलाश मे सन्नद्ध है। नये और एकदम अपरिचित शब्द कविता में अतिथि की तरह नही बल्कि चौकन्ने सृजक की ताकत को सामाजिक संरचना के सन्दर्भ मे व्यापक व पुष्ट करने के लिए उपजे हैं।

जब-जब काव्य-भाषा साधारण आदमी के बोल-चाल को अपनी अभिव्यक्ति के आधार के रूप मे चुनती है तब-तब ऐसा लगता है कि कविता की भाषा नीचे आ गयी है या उसका पतन हो गया है। पर यह कविता का पतन नही, बल्कि उसका बार-बार अपने असली आधार की ओर लौटना है।

संग्रह के बारे में

रचनाकार जीवन भर एक पढ़ने वाला आदमी होता है, पेशे से चाहे वह पढ़ाने वाला ही क्यों न हो। रचना के क्षेत्र में अनुभव की सूक्ष्म पकड़ और अभिव्यंजना के स्तर का हमारी संस्कृति में विशेष महत्त्व रहा है। स्कूलों या विश्वविद्यालयों की कारोबारी शिक्षा की अपेक्षा कविता स्कूली तालीम का हिस्सा नहीं है, वह समाज सापेक्ष दृष्टि से आत्म-शिक्षण तथा आत्म-परीक्षण का अभिव्यक्ति से गहरा संबंध रखने वाला संवेदनात्मक माध्यम है। फिर भी जो लोग पेशे से तालीम-बरदार हैं वे अगर कविता को अपने बयान का माध्यम बनाते हैं तो यह भी पड़ताल का मुद्दा जान पड़ता है कि वे लोग अपनी रचनाओं के मार्फत क्या देते है? जीवन और जगत से असम्पृक्ति या दोनों में सम्पृक्ति का 'उपदेश'? बहुत कम रचनाओं में जीवन और जगत के द्वन्द्व का एकान्तिक संघर्ष और संवेदन, एकदम निजी व अनोखी दृष्टि के साथ अभिव्यंजना की आंशिक छटपटाहट के साथ भाषिक स्तर पर प्रभावोत्पादक हुआ है।

राजस्थान शिक्षा विभाग, अभिव्यक्ति के कतिपय कला माध्यमों को सरकारी स्तर पर पोषित व पल्लवित करने के संकल्प में प्रतिबद्ध है; इस कार्य के लिए प्रांतीय सरकार की नीति और रचनात्मकता के पोषण से भारी लगाव की प्रशंसा वस्तुतः एक निर्व्याज प्रशंसा ही कही जायेगी।

समस्त प्रांत के रचनानुरागी शिक्षकों की विपुल कविताओं में से कुछ कविताओं का चयन निश्चय ही एक जोखिम का काम है। इसमें सम्पादक बहुत कोशिश करने के बाद भी सम्भवतः बहुत सही कांटा (तराजू) सिद्ध नहीं हो सकता। अपनी ग्राह्यता के अनुसार मैंने जिन कविताओं का चयन किया है उनमें कुछेक कवियों की जिज्ञासा और दृष्टि ने वाकई मुझे आकर्षित किया है।

जिन रचनाओं ने मेरी ग्राह्यता को प्रभावित नहीं किया उनके संदर्भ में मैं यही निवेदन करना चाहूँगा कि

संभवतः इसमें मेरी सीमाओं का दोष है रचनाओं के सामर्थ्य का नही।

अधिकांश कवियो ने अपनी कविता का विषय काव्य की जानी-पहचानी अति परम्परित स्थितियों, घटनाओं, व्यक्तियों या अनुभवों को ही बनाया है। जिस कारण वे अपने जमाने की भाषा और संवेदना, दोनों का स्पर्श नहीं कर पाये। कुछ इतने लटके-झटके के चक्कर में पड़ गये कि वे अपने मूल अनुभव को पहली ही पंक्ति में नष्ट कर बैठे।

कुछ ने कवि सम्मेलनों के मंच पर प्रयुक्त होने वाली, चुटकुलेबाज कवियों की हँसोड़ भाषा को ही 'व्यंग्य' समझकर अपनी अभिव्यक्ति के लिए ज्यों का त्यों अपना लिया। सपाट कथन मे गहरी अनुभूति के दर्शन विरल ही है। शब्दों की ताकत से कोई संवेदनात्मक लगाव और गहरी दोस्ती न होने के कारण अधिकांश रचनाओ में अक्सर शब्दों के 'अनाप' प्रयोगों का व अनर्गल मुखरता का बाहुल्य है।

जीवन का अनौचित्य भी बहुतों ने अपनी कविता का विषय बनाया लेकिन इसके पीछे कोई नवीन क्रांतिकारी दर्शन न होकर अपनी व्यक्तिगत कुंठा और निराशा ही अधिक है। लेकिन कुछ ऐसे भी रचनाकार हैं जिन्होंने 'जीवन' या 'समग्र जीवन' को ही अपनी कविता का विषय बनाया है पर जीवन जीने के वे सारे निष्कर्ष किसी न किसी बिम्ब या 'उपदेश' के रूप मे हमारे पूर्ववर्ती साहित्य में अपनी समस्त शक्ति और उपजीव्यता के साथ आ चुके हैं।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवियों ने अपने काव्यानुभव को नितांत निजी भाषा और तरीके से अभिव्यक्ति मे उपार्जित नहीं किया बल्कि अभिव्यक्ति के उन्हीं छल-छद्मों के आसपास मंडराते रहे जो उन्हें पूर्ववर्ती पाठ्यक्रमाश्रयी काव्य से मिले। पूर्ववर्ती साहित्य को अनुकरण के लिए नहीं अपितु अपने अनुभव को अधिक खरा व मुक्त बनाये रखने के लिए पढ़ना चाहिए। एक सबसे बड़ी कमी कुछेक कवियों

में जो मुझे दिखायी दी उसकी ओर इंगित करने की धृष्टता के लिए क्षमा चाहते हुए यह अवश्य कहूँगा कि 'स्वाध्याय' और 'स्व दृष्टि' के द्वन्द्व का उद्रेक लगभग अनुपस्थित है।

जिन कविताओं ने इस संग्रह में स्थान पाया है उनमें नये मनुष्य के संघर्ष; चाहे वे व्यक्तिगत संबंधों की परिधि में आते हों या सामाजिक संबंधों की दिशा में; सभी जगह अचरज और युद्ध का सा वातावरण लगता है। मूल अनुभूति अपनी वास्तविकता मे अधिकतम नग्न है। समसामयिक इतिहास का बहुत गहरा दबाव भी इन कविताओं की जड़ में मौजूद है बल्कि कहीं-कहीं तो ये उसी की वजह से लिखी भी गयी हैं। काम संबंधों से लेकर राजनीतिक संबंधों तक किसी भी संबंध को भाषा ने खूब आड़े हाथों लिया है।

एक तल्ख़ अहसास है इस बात का कि जिस तरह से हम अपना और अपने से संबंधित अन्य चीजों का चेहरा पहचानते थे असल में वह उस तरह का था नहीं।

वस्तु जगत के बीच हमारी ऐन्द्रिक चेतना किस तरह अपना रूप बदलती है इसकी कमोबेश अभिव्यक्ति इन कविताओं में कहीं छिट-पुट तो कहीं फैलकर सामने आयी है। समय और स्थान के छोटे से छोटे व निजी अंश से लेकर समाज और ब्रह्माण्ड के वृहत्तर आयामों में भारतीय मन की जो चेतना जिस नयी और विश्वसनीय भाषा के माध्यम से हिन्दी कविता में सन् साठ के बाद आयी उसी चेतना के आलोक में मैंने इन कविताओं को देखा है, उसी आलोक में इन्हें परखा भी जाना चाहिए।

किसी भी कवि की कविता का अलग से उद्धरण न दे पाने के लिए मैं सन् अठहत्तर के सुधी सम्पादक नंदकिशोर आचार्य का एक वाक्य उद्धरित करने में ही अपने मंतव्य की स्पष्टता पाता हूँ— "कविताओं के उद्धरण देना (यहाँ पर) इसलिए उचित नहीं है कि इससे अलग-अलग बिम्बों, उपमानों आदि की तरफ तो ध्यान आकर्षित किया जा

संभवतः इसमें मेरी सीमाओं का दोष है रचनाओं के सामर्थ्य

का नही।

अधिकाश कवियों ने अपनी कविता का विषय काव्य की जानी-पहचानी अति परम्परित स्थितियों, घटनाओं, व्यक्तियों या अनुभवों को ही बनाया है। जिस कारण वे अपने जमाने की भाषा और सवेदना, दोनों का स्पर्श नहीं कर पाये। कुछ इतने लटके-झटके के चक्कर में पड़ गये कि वे अपने मूल अनुभव को पहली ही पंक्ति में नष्ट कर बैठे।

कुछ ने कवि सम्मेलनों के मंच पर प्रयुक्त होने वाली, चुटकुलेबाज कवियों की हँसोड़ भाषा को ही 'व्यंग्य' समझ कर अपनी अभिव्यक्ति के लिए ज्यो का त्यों अपना लिया। सपाट कथन मे गहरी अनुभूति के दर्शन विरल ही हैं। शब्दों की ताकत से कोई संवेदनात्मक लगाव और गहरी दोस्ती न होने के कारण अधिकांश रचनाओं में अक्सर शब्दों के 'अनाप' प्रयोगों का व अनर्गल मुखरता का बाहुल्य है।

जीवन का अनौचित्य भी बहुतों ने अपनी कविता का विषय बनाया लेकिन इसके पीछे कोई नवीन क्रांतिकारी दर्शन न होकर अपनी व्यक्तिगत कुंठा और निराशा ही अधिक है। लेकिन कुछ ऐसे भी रचनाकार हैं जिन्होंने 'जीवन' या 'लगभग जीवन' को ही अपनी कविता का विषय बनाया है पर जीवन जीने के वे सारे निष्कर्ष किसी न किसी बिम्ब या 'उपदेश' के रूप मे हमारे पूर्ववर्ती साहित्य में अपनी समस्त शक्ति और उपजीव्यता के साथ आ चुके हैं।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवियों ने अपने काव्यानुभव को नितांत निजी भाषा और तरीके से अभिव्यक्ति में उपार्जित नही किया बल्कि अभिव्यक्ति के उन्ही छल-छद्मों के आसपास मंडराते रहे जो उन्हे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रमाश्रयी काव्य से मिले। पूर्ववर्ती साहित्य को अनुकरण के लिए नही अपितु अपने अनुभव को अधिक खरा व मुक्त बनाये रखने के लिए पढ़ना चाहिए। एक सबसे बड़ी कमी कुछेक कवियों

में जो मुझे दिखायी दी उसकी ओर इंगित करने की धृष्टता के लिए क्षमा चाहते हुए यह अवश्य कहूँगा कि 'स्वाध्याय' और 'स्व दृष्टि' के द्वन्द्व का उद्रेक लगभग अनुपस्थित है।

जिन कविताओं ने इस संग्रह में स्थान पाया है उनमें नये मनुष्य के संघर्ष; चाहे वे व्यक्तिगत संबंधों की परिधि में आते हों या सामाजिक संबंधों की दिशा में; सभी जगह अचरज और युद्ध का सा वातावरण लगता है। मूल अनुभूति अपनी वास्तविकता मे अधिकतम नग्न है। समसामयिक इतिहास का बहुत गहरा दबाव भी इन कविताओं की जड़ में मौजूद है बल्कि कहीं-कहीं तो ये उसी की वजह से लिखी भी गयी हैं। काम संबंधों से लेकर राजनीतिक संबंधों तक किसी भी संबंध को भाषा ने खूब आड़े हाथों लिया है।

एक तल्ख़ अहसास है इस बात का कि जिस तरह से हम अपना और अपने से संबंधित अन्य चीजों का चेहरा पहचानते थे असल में वह उस तरह का था नही।

वस्तु जगत के बीच हमारी ऐन्द्रिक चेतना किस तरह अपना रूप बदलती है इसकी कमोवेश अभिव्यक्ति इन कविताओं में कहीं छिट-पुट तो कहीं फैलकर सामने आयी है। समय और स्थान के छोटे से छोटे व निजी अंश से लेकर समाज और ब्रह्माण्ड के वृहत्तर आयामों में भारतीय मन की जो चेतना जिस नयी और विश्वसनीय भाषा के माध्यम से हिन्दी कविता मे सन् साठ के बाद आयी उसी चेतना के आलोक में मैंने इन कविताओं को देखा है, उसी आलोक में इन्हें परखा भी जाना चाहिए।

किसी भी कवि की कविता का अलग से उद्धरण न दे पाने के लिए मैं सन् अठहत्तर के सुधी सम्पादक नंदकिशोर आचार्य का एक वाक्य उद्धरित करने में ही अपने मंतव्य की स्पष्टता पाता हूँ— "कविताओं के उद्धरण देना (यहाँ पर) इसलिए उचित नही है कि इससे अलग-अलग बिम्बों, उपमानों आदि की तरफ़ तो ध्यान आकर्षित किया जा

सकता है लेकिन उससे कही कविता की समग्रता खंडित होती है—और फिर किसी भी कविता से कोई अंश उद्धृत करना तभी तो कुछ आवश्यक होता जब कविता आपके सम्मुख न होती।"

राजस्थान शिक्षा विभाग ने मुझे इस संग्रह के सम्पादन का अवसर दिया इसके लिए आभारी हूँ और यह सुझाव देता हूँ कि इस तरह की सामग्री पर्याप्त समय पूर्व ही सम्पादक को भेजने की व्यवस्था की जानी चाहिये। संग्रह के स्तर को निर्धारित करने वाले समस्त रचनाकारो को मेरी बधाई।

जोशियाड़ा,
उत्तरकाशी (उ० प्र०)

—लीलाधर जगूड़ी

अनुक्रम

सुबह की तलाश

अपनी तलाश

स्थिति के आसपास

सुबह की
तलाश

मोडसिंह 'मृगेन्द्र' / रमेश 'मयंक' / सांवर दइया / मनमोहन झा / बाबू 'हँसमुख' / मदन याज्ञिक / कुमारी खुशाल श्रीवास्तव / भागीरथ भार्गव / मुख्तार टोंकी / मेवाराम कटारा 'पंक' / फतह ला. गुर्जर 'अनोखा' / हेमराज शर्मा 'शिशु' / रामनिवास लुबाड़िया 'विश्वबंधु' / प्रेम शेखावत 'पंछी' / रश्मि गुप्ता / भगवतीप्रसाद व्यास / नारायण भारती / नंदकिशोर चतुर्वेदी / हरीश व्यास / चतुर कोठारी / शिव 'मृदुल' / श्रीनन्दन चतुर्वेदी / जगदीश सोनी / अरनी रॉबर्ट्स / सुरेश पारीक 'शशिकर' / अब्दुल मलिक खान / रूपसिंह राठौड़ / अर्जुन 'अरविंद' /

□ मोडसिंह 'मृगेन्द्र'

सुबह की तलाश

वे दौड़ते हैं
यहां से वहां
वहां से यहां
कि लम्बे अंधियारों के बाद
सुबह हो जाए।
मगर इस अनंत भाग दौड़ में
सूरज बरकरार उगा
चिड़ियाएं चहकीं
गुलाब महके।
पर वे अपने आंगन में
एक किरण उतारने
एक गुलाब खिलाने की कला में
हर बार चूक गये
क्योंकि हर बार जब वे होश में आए
तब तक दिन ढल चुका था
रोशनी को अंधियार निगल चुका था
पर खत्म नहीं होती है कहीं सुबह की तलाश।

नये अंधेरे में

आज, जिन्दगी
मसीहा बनना चाहती है
कब्रें खोद-खोद
गड़े मुर्दे उखाड़
हरेक को
तर्क वितर्क की सीमाओं में
कायर और भ्रष्ट
सिद्ध करना चाहती है।
आज, जिन्दगी
मसीहा बनना चाहती है।

क्रास पर टंगे ईसा
सुजाता की खीर पाते बुद्ध
वैष्णव जन गाते गांधी
अहिंसक उपदेशों वाले महावीर
इन्तकाम पिपासी नारी की
सेवा सुश्रुषा करते मुहम्मद से
आज हम
किस कदर कम हैं
कितनी दौड़
कितने भाषण—संभाषण
फूल मालाओं के अम्बार
कोटि करतल ध्वनि के अलावा
दुनियां

हमसे और कौन सा
प्रमाण पत्र चाहती है।
आज, ज़िन्दगी
मसीहा बनना चाहती है।

हमने लिखी हैं
टीकाएँ
हम प्रतिपादित कर चुके
पूर्ववर्ती सरकारों के गुणगान
(वीरगाथा काल के समान)
परिवर्तित सरकारों के 'मान'
हमने हृदय परिवर्तन किया
अब और दुनियां
कौन सा परिवर्तन चाहती है
आज, ज़िन्दगी
मसीहा बनना चाहती है।

□ रमेश 'मयंक'

निर्माण

मेरे एक तरफ
पथ प्रदर्शक
दिशा बोधक
पुस्तकों से भरी आलमारी है
जिनके माध्यम से
नयी पीढ़ी का निर्माण करता हूँ
और
दूसरी तरफ
कमठाने पर काम करने वाले
कारीगर का थैला रखा है
जिसमें
छैनी, हथौड़ा, सूत, सावल है
मुझ में और कमठाने पर
काम करने वाले कारीगर में
कोई अन्तर नहीं
हमारा
या देशवासियों का एक ही पथ है
सभी निर्माणरत हैं
उसी पल मेरे सामने
एक गाड़ी का नक्शा तैर जाता है

जिसका एक पहिया
श्रालमारी में रखी पुस्तकों से
श्रौर दूसरा
कारीगर के थैले में भरे
औजारों का बना नजर आता है
लगता है—
गाड़ी के दोनों पहियों की तरह
हम सभी एक दूसरे के पूरक हैं
जैसे सीमा पर खड़ा जवान भी
श्रौर खेत में काम करता किसान भी।

□ सांवर दइया

कालान्तरण

सैकिण्ड से मिनट
और घण्टे और दिन और सप्ताह
और पखवाड़े और महीने और वर्ष
इसी तरह बनते जा रहे हैं
बिना किसी अर्थ या संवेदन या स्पन्दन या पुलक के
और हम घोषणा करते हैं कि हम जीवित हैं !

घर और दफ़्तर के बीच
शटल की तरह घूमता रहता हूं मैं
गणितीय निष्कर्षों की तरह लिख सकता हूं
जीवन में भी कुछ सूत्र :
—जैसे ज़रूरतें और जिम्मेदारियां आदमी को
पुर्जा बनाती हैं

—कि भूख की भट्टी में सारे आदर्श जल जाते हैं
सूखी लकड़ियों की मानिन्द
कि जीवन की सड़क पर
आगे बढ़ने की अंधी दौड़ में भाग लेने के बाद
मैं सहर्ष स्वीकार करने लगा हूं कि
सही बातें सिर्फ़ दीवारों पर पोस्टरों के रूप में
शोभा देती हैं !

अब जब कभी अकेले में
मेरे मस्तिष्क में फड़फड़ाते हैं बचपन में पढ़ी पुस्तकों
के पृष्ठ

तर्क के पेपरवेट से उन्हें दबाकर मैं
दूसरों के धब्बों को 'मेग्नीफाइंग ग्लास' से
देखने और दिखाने लगता हूँ !

शीतल हवा के झोकों के साथ
नये स्वेटर या गर्म कोट की समस्या आ खड़ी होती है
तुम्हारे चिकने शरीर पर हाथ फेरते समय
शरीर की नसें झनझनाने की जगह
रसोई मे रखे खाली डिब्बे बजने लगते है
चाँदनी में टहलते हुए
या तुम्हारे जूड़े में फूल टांकते हुए
जब भी गीत गुनगुनाने के लिए हिलाता हूँ होंठ
मुंह से प्रसारित होने लगते है बाज़ार भाव
और इसी बीच
शटल कुछ और तेज़ गति से
आने-जाने लगता है
और सैकिण्ड से मिनट
और घण्टे और दिन और सप्ताह
और पखवाड़े और महीने और वर्ष
इसी तरह बनते रहते हैं
बिना किसी अर्थ या संवेदन या स्पन्दन या पुलक के !

□ मनमोहन झा

लक्ष्य-भेद

बोलो बेटे अर्जुन !
सामने क्या देखते हो तुम ?
संसद ? सेक्रेटेरिएट ? मंत्रालय ? या मञ्च ??
अर्जुन बोला तुरन्त
गुरुदेव ! मुझे सिवा कुर्सी के कुछ भी नजर नहीं आता

पुलकित गुरु बोले द्रोण
हे धनसञ्चय ! तुम मंत्रीपद वरोगे
काम कुछ भी नहीं करोगे / फिर भी
धन से घर भरोगे
केवल कुर्सी के लिए जियोगे ।
और कुर्सी के लिए ही मरोगे ।

हिन्दुस्तान

घूर्तों को नारा
मूर्खों को चारा
सारे जहां से अच्छा
यह हिन्दुस्तान हमारा।

शहर

हर किसी को
मुफ़्त में / बांटता रहा
अकेलेपन का ज़हर
यह / भीड़ भरा / शहर।

□ बाबू 'हँसमुख'

विडम्बना

शहर में एक जीप
सुबह से चक्कर
लगा रही थी
हर बार एक ही
राग गा रही थी
आज आपके शहर में
शाम ठीक चार बजे
नये मंत्रीजी पधार रहे है
उनके भव्य स्वागत के लिये
आप सब सादर आमंत्रित हैं।
लेकिन !
उसके कुछ ही देर बाद
फिल्म पोस्टरों से लदा हुआ
एक छोटा सा ऑटो रिक्सा
लगाता हुआ आवाज़ आया
कि सावधान !
आपके शहर में

तहलका मचाने
श्रा रहा है
'फांदेबाज'
श्रवश्य पधारिये
श्रौर देखिये।

□ मदन याज्ञिक

सपनों का बुनकर

मैंने सपने बुने थे
उन तंतुओं से
जो महान नेताओं की
भ्रामक आशाओं की वाणियों से
निसृत हुए थे
तार-तार हो गए
तीस वर्षों का श्रम-स्वेद श्लथ हो टूट-टूट गया।

मेरे विशाल आंगन में
उसकी चिन्दियां बिखरी पड़ी हैं
जिन्हें मेरी बुझी हुई आँखें घिसट-घिसट कर देख रही हैं
जिनमें अंकित हैं हँसते हुए जख्म
जिनकी कराह मिश्रित हँसी के स्वरों में
सुनाई-दिखाई देते हैं
हड़ताल, हिंसा, हेय साधनों के बाहुपाश में तड़पते हुए लक्ष्य,

ईर्ष्या से जलते हुए और
अपनी जेवों में गुप्त खनक भरती हुई भोगवृत्ति, भाषा-शूल, जातिवाद के खंडित द्वीप,

उसके ओठों पर विजय है या पराजय
कौन जाने?

कभी-कभी

कभी-कभी इस प्रांगण में
गांधी की 'एकला चलोरे' वाली लाठी का
ठकठक सुनाई पड़ती है,
किन्तु जब कान यथार्थ को परखते है तो
लगता है कि महान नेता का अभिनेता
विडंबनापूर्ण ठिठोली कर रहा है
और जनता उसे सच मानकर
छलना का नेतृत्व स्वीकार लेती है।
मेरा देश कितना सरल और भोला है !

अब मैं सपनों को किन तन्तुओं से बुनूं ?
ताना-बाना टूट जाता है।
गांठों से भारा सपनों का पट यदि बुन भी लिया जाय
तो क्या स्वर्णिम यथार्थ के बीज
उसमें अंकुआ पाएंगे ?

□ कु० खुशाल श्रीवास्तव

प्रतिक्रिया

आज के अर्जुन ने जयद्रथ को पत्र लिखा,
"कमीने !
हमारे आदमी को अन्याय से मार दिया ?
हम तुम्हें ढील दिये हुए थे—
लेकिन तुम याद रखना कि कल शाम के बाद तुम भी—
जिन्दा न रहोगे।"
प्रतिक्रिया हुई—
अब वो जमाने लद गये।
ऐसे हजारों जूतियां चटकाते फिरते हैं—
बातें बघारते हैं
धमकाते हैं और दुबक जाते हैं।

मैं

अब मैं 'मैं' नहीं रह गया हूँ
एक पद बन गया हूँ
जिसकी कुछ अपनी गरिमा है।

मुझे रहम आता है
उन लोगों की अल्प बुद्धि पर
जो अब भी मुझ में मेरे उस 'मैं' को ढूंढते हैं।
लेकिन अब मैं उनके लिये
मैं बन कर
कैसे जो सकता हूं ?
यह मेरा ओछापन नहीं होगा
जो इतनी गरिमा प्राप्त करके भी
'मैं' से ही चिपका रहूं।

□ भागीरथ भार्गव

तीसरी आज़ादी

मैंने सोचा था—
वह आकाश अधिक खुला
और उन्मुक्त होगा
उस आकाश के नीचे
घर-घर टेरती
सूने आंगन झांकती
निरन्तर बहती होगी हवा।

मैंने सोचा था—
वहां धान कूटती लखी
पत्थर तोड़ते भोलू
और हल जोतते मंगू के लिए
अधिक खुले संसार होंगे।

मैंने सोचा था—
वहां कम से कम
एक साथ बैठकर
हम सब
दु:ख में बहा सकेंगे आंसू
या सुख के किसी क्षण में
लगा सकेंगे ठहाके

ज़बान और कलम पर नहीं होगा
कोई पहरा।

वहाँ कुछ और ही आलम था
कई गलियों में बँटी थी बस्ती
दाँये जाने वाली गली
कई गुमराह पगडंडियों में गुम थी
बाँई ओर जाने वाली राह
कुछ कटावों से घिरी
फिर आगे हो गई थी समानान्तर।

केवल बदली नज़र आ रही थी टोपियाँ
धोतियाँ पहनने वाले लोग नेकर पहने
सुबह-शाम करने लगे थे मार्च-पास्ट।

आकाश अपने-अपने घेरे में बंटा था
चीलें और गिद्ध एक गोले में
लगा रहे थे अनेक वृत्त।

अधिकतर लोग अपने घर के आगे घिर आये
पानी को एक-दूसरे की ओर उलीच रहे थे
या फिर अपनी बाहर दीवारी और अधिक ऊँची
बनाये जा रहे थे।

मेरी चुंधियाती आँखों को
नहीं मिल रहा था कोई सुकून।

मैंने किन की आज़ादी के लिए
माँगी थी—दूसरी आज़ादी ?

मेरे दोस्त अब भी गर्म हैं
गर्म-गर्म बातें करते

गर्म-गर्म चुस्कियाँ लेते
वे मेरी हर बात को स्वीकृति देंगे।

मैं उनसे माँगूंगा—तीसरी आज़ादी
अपने लिए, उनके लिए
जो आज नये आकाश तले
दबे पड़े हैं।

□ मुख्तार टोंकी

प्रश्न

एक नहीं
सैकड़ों सीताएं
मेरे नगर में घूमती हैं।
अपनी लंका छोड़ कर
बहुत से रावण
यहाँ पर आ गये हैं।
मुझे इतना बता दो
इस युग का
राम किधर है ?

नया अवतार

राम कृष्ण के अनन्तर
भारत की पुण्य भूमि पर
उतरा है
एक नया अवतार
ईश्वर की भाँति
सर्वव्याप्त
'भ्रष्टाचार'।

अभिलाषा

शबनम की तरह
स्वाति नक्षत्र की एक बूंद !
काश !
मैं कोई आंसू होता
किसी अनाथ की आँखों से
मोती बन कर
टपका होता।

□ मेवाराम कटारा 'पङ्क'

चार आयाम

रक्षक

मानवीय अधिकारों का
ढिंढ़ोरा पीटने वाले
मानवता पर तलवार चलाते हैं
मुल्ला, पण्डा, पादरी ही
धर्म को खाते हैं।

दुनिया

खोल दी पिटारी
मदारी ने देखा
चार दिन नचाकर
नाच गया बन्दर
मिट गई रेखा।

अज्ञात त्रुटि

समा गई अज्ञात त्रुटि
मेरे दिल में
जैसे कोई साँप
घुस गया हो
बिल में।

अतिक्रमण

प्रेम लता इतनी न सींचो
कि दूसरे के घर में छा जाय
अपेक्षा वही करो
जो सम्भावना में समा जाय।

□ फतहलाल गुर्जर 'अनोखा'

अपने दो कोण

दोहरा अस्तित्व

जब मैं चुप हूँ
तब ज्ञानी हूँ, देश भक्त हूँ, सर्वोदयवादी हूँ
मौना मर्यादी हूँ
बोलता हूँ
तब उन्ही नज़रों में
प्रतिक्रियावादी हूँ।

परिचय

आप ही की सेवा में
घूमता रहता हूँ
पुत्र!
अभिनेता है
मैं!
अभी नेता हूँ।

□ हेमराज शर्मा 'शिशु'

उपयोगिता

स्वेटर की
सलाइयाँ
निकालते हुए
कक्षा में
अध्यापिका ने कहा
कमला उठो
पप्पू को
चुप करो
और
विमला तुम
चाय का पानी चढ़ाओ
क्योंकि तुम दोनों को
पराये घर जाना है।

□ रामनिवास सुबाड़िया 'विश्वबंधु'

एक सत्य : दो तथ्य

गौरव, गरिमा, वैभव, विलास के
साधन जुटाने के लिए
किया जाता था पहले कभी
निरीह अश्व का मेध

उन्हीं समान उद्देश्यों से प्रेरित
कुछ आदमियों द्वारा
तमाम आदमियों का
रचा जाता है
सामूहिक नर मेध

कितनी वीभत्स है
अतीत की यह पुनर्यात्रा
कि अश्वमेध की तर्ज पर
नरमेध का विधान ?

।

□ प्रेम शेखावत पंछी

आशा

विश्वासों के हिमगिरि
चाँद की ठण्डी ग्राग से
नही गलते हैं
ग्राकाश के बियावान ग्रधरों पर
प्यार के दुर्निवार सपने
नहीं पलते हैं।

तोड़ता है पहाड भी तब ही
दीप जब ग्राशा के
ग्राँखों में जलते है।

□ रश्मि गुप्ता

अभिव्यक्ति की तलाश

दरारों से झाँकते रोशनी के टुकड़े
इस प्रयास में डूबे हैं
कि—उन्हें,...कोई आकार मिल सके
श्रम उनका जब तक कोई रंग लाए
सूरज कहीं और को चल देगा
और कोई आकार अधूरा रह जाएगा।
फिर शुरू होगी...
अभिव्यक्ति की तलाश।

□ भगवतीप्रसाद व्यास

ज्ञान का विष

इस वर्ष नदियां सब उफनी हैं।
प्रतिवर्ष उफनती हैं
इस वर्ष अधिक कुछ।
गंगा-यमुना की कछार क्या
मरुस्थल कांपे हैं।

भारत की प्राणदायी
धमनियां—शिराएं
जीवन की वरदायी सहस्रों वर्षों से
पोषती रही हैं
सरसाती रही हैं
आज क्यों कुयश है !

भोगते रहे हैं ह्रास और रोष भी
दुलार और प्रताड़ भी
अब कुछ अधिक ही प्रताड़ने लगी हैं।

इनकी सहजता—स्वाभाविक
गति के व्यति क्रम में
हमारे औद्धत्य—

हमारी सिद्धि ही स्वार्थ की
कारक तो नहीं है !

सागर के तल पर, गर्भ में
वायु की परतों पर
पर्वत शिखरों पर, ढालों में, वनों में,
कछारों, निर्भरों, नदियों की धार में
हमारी दृष्टि का, हमारे स्पर्श का
हमारे चरणों का—
हमारे ज्ञान का विष तो
संचरित नहीं हुआ है कहीं ?

□ नारायण भारती

प्रश्नवाचक हम

जयन्तियाँ मनाते
या शोकसभाएं करते
बीतती है हमारी जिन्दगी
या तो हम परीक्षाएं लेते हैं
या देते हैं···

स्वागत अथवा विदाई
संवाद अथवा विवाद
हमारी जिन्दगी के पर्याय है।
मित्रों ! हम ऐसे यात्री है
जिनके गले में
फूल मालाएं नही
मृत चिड़ियाएं अटकी है
कब तक
आखिर कब तक
अपने आप को नकारने का
नाटक करें···?

ऐसे ही बीतती है
हमारी जिन्दगी
गर्वोक्तियां करते
या
दुर्लत्तियां झाड़ते।

□ नन्दकिशोर चतुर्वेदी

राजनीति

'तू-तू' और 'मैं-मैं' के मध्य की
टूटती सीमा रेखा में
उलझते सम्बन्धों को
जोड़ने वाली कड़ी
जिसमें चित भी मेरी और
पट्ट भी मेरी।

समाज

खोखले आदर्शों को
सिर पर उठाने वाले
अगणित स्तम्भों का खण्डहर।

□ हरीश व्यास

दायित्व-बोध

मंत्री महोदय ने कहा—
पुलिस जनता का
विश्वास अर्जित करे।
हमने कहा—
हुजूर
विचार उत्तम है
मगर
उनसे इतना अनुरोध
और करें कि इसका क्रियान्वयन वे जनता को
थाने पर बुलाकर
न करें।

यथास्थिति

मंत्री महोदय का
भाषण सुनकर
एक ने दूसरे से

पूछा—
विचार
कैसे लगे ?
जवाब मिला—
रिकार्ड वही है
सिर्फ़ सुई बदली है ।

□ चतुर कोठारी

प्रगति और परिवर्तन

मेरे देश में
जहाँ
दौड़ श्रौर होड़ है
उन्हें पहिचाना जाता है
शहर के नाम से।
शहर व गाँव
इस देश की दो संस्कृतियाँ हैं।
सिनेमा श्रौर नंगा शहर
गति का प्रतीक
श्रौर
गति-हीनता का
चमक हीन गाँव।
श्रन्तर है
दोनों में
प्रगति की यह
कैसी चाल है ?
जिसमें
शहर महानगर हो गये
श्रौर
गाँव-ढाणियाँ।

जिजीविषा

जिनसे
मदद की उम्मीद थी
उन्हीं ने
ठोकर लगाई है,
फिर भी
कुछ करने की
हमने !
कसम खाई है ।

सभ्यता

शिष्ट !
समय पर आते हैं तो
इन्तजार की
सजा पाते हैं ।
विशिष्ट !
समय के बीच आते हैं
और आयोजन में
व्यवधान कर जाते हैं ।
पर
अशिष्ट !
समय के बाद आते हैं
फिर भी ये अपनी
दोनों आँखें दिखाते हैं

श्रौर हम हैं कि सभी उन्हें
माला पहिनाते हैं
श्रौर
जय जय कार कर
श्राकाश गुंजाते है।

□ शिव मृदुल

जीवन-बल्व

जीवन-बल्व !
तुम
क्या इसलिये प्रकाशित
कि मेरे
स्नायु-संस्थान का स्विच ऑन है ?
या इसलिये कि
मेहनत के मीटर की मासिक रीडिंग
ठीक चल रही है
या इसलिये कि
अभी तक प्राणों के पोल का
फ्यूज नहीं उड़ा है
या इसलिये कि
स्वासों के सब-स्टेशन से
अभी करन्ट बाधित नहीं हुआ
या इसलिये कि
सृष्टि की सरिता पर
बनाई गई
जनम-मरण की बहुउद्देश्यीय योजना पर
जीवन-शक्ति का जेनरेटर चालू है
तो बल्व !

तू बोल
तेरे प्रकाश की जय बोलूं
या जीवन शक्ति का
जेनरेटर बनाने वाले जगत पिता की !

□ शिव मृदुल

जीवन-वल्व

जीवन-वल्व !
तुम
क्या इसलिये प्रकाशित
कि मेरे
स्नायु-संस्थान का स्विच ग्रॉन है ?
या इसलिये कि
मेहनत के मीटर की मासिक रीडिंग
ठीक चल रही है
या इसलिये कि
ग्रभी तक प्राणों के पोल का
फ्यूज नहीं उड़ा है
या इसलिये कि
श्वासों के सव-स्टेशन से
ग्रभी करन्ट वाधित नहीं हुग्रा
या इसलिये कि
सृष्टि की सरिता पर
बनाई गई
जनम-मरण की बहुउद्देश्यीय योजना पर
जीवन-शक्ति का जेनरेटर चालू है
तो बल्व !

तू बोल
तेरे प्रकाश की जय बोलूं
या जीवन शक्ति का
जेनरेटर बनाने वाले जगत पिता की !

□ श्रीनन्दन चतुर्वेदी

प्रार्थना करो

क्या कहा ?
तुम भूख से मर रहे हो ?
रोग्रो मत
मूल्य-वृद्धि का संकट है
बेचैन क्यों होते हो ?
हमने तुम्हें
मँहगाई के सलीब पर टाँगा है।
ग्रभी, कुछ ही
ग्राश्वासनों की कीलें
कलाइयों के ग्रार-पार हुई हैं
ग्रभावों के काँटों का ताज
तुम्हें सालता है ?

डरो मत !
हमारे लिये प्रार्थना करो
प्राणघाती खंजर
ग्रभी-ग्रभी तुमको चीरता
तुम्हारे दिल के
ग्रार-पार निकल जाएगा।
तुमको हम

युग का
मसीहा बना देंगे
अमर कर देंगे
चिल्लाओ मत, ठीक उसी तरह
प्रभु से प्रार्थना करो
हमारे लिये—
जिस तरह पिछले मसीहा ने की थी।

□ जगदीश सोनी

दो फिरकियाँ

एक

लोहे के चने चबाने
का दंभ
इतिहास से खरीदा है तो
इसके
उपयोग की कला
तुझे
आती नही है मेरे यार !
असल में उन्होंने कच्ची तूअर की
दाल ही चबाई थी
जिसे आज
पकी पकाई को तू हबोड़ रहा है ।

दो

तने से लिपटी
बेलों के
लावण्य का पाश
नौसिखियों के

गले में
फांसी का फंदा ही
कहा जायेगा।
इससे तो
बबूल की पत्तियों को
साधुवाद !
जो मरती
अथवा
कटती फटती भी हैं तो
अपनेपन
को लेकर।
कुछ भी हो हमें
तो जीने का
स्वतन्त्र हक
प्रदान कर जाती हैं।

□ अरनी रॉबर्ट्स

अंजामे गुलिस्तां क्या होगा

बहुत भोले हैं हम
नया नया शौक था
चिड़ियां पालने का,
हर तरह की।
पहिचान से
नावाकिफ, हमने
खरीद लिये थे
ढेर मे बच्चे
(चिड़ियों के)
चालाक बहेलिये से।
खूब ध्यान और वक्त
दिया उन्हें।
अब वे
हो गये हैं
पहिचाने जाने लायक
और...
सिर थामे हम
देख रहे हैं
कि वे सब उल्लू हैं

ग्रौर जो हमारे बाग को
हर शाख पर
बैठे हैं।
अब, कोई रास्ता बाकी नहीं
सिवाय इसके कि
'अंजामे गुलिस्तां' भुगतें !

□ सुरेश पारीक 'शशिकर'

क्रन्दन

मैं अब जा रहा हूँ मगर कुछ और बनकर आ रहा हूँ
तब सभवतः मैं तुम्हारे काम आ सकूं
यह प्रकाश भरा दिन
ये कोलाहल भरी सड़कें
जिन पर प्रस्फुटित हो रहा है
विद्रोह का अंकुर
इस तरह लग रहा है कि
कल सब कुछ बदल जायेगा
क्षुधा पीड़ित व्यक्ति
व्यक्ति को खा जायेगा
आज केवल कागजों में किए गये
शांति के प्रयासों से
मंचों पर गाये हुए
हरित क्रान्ति के रागों से
ऊब चुका है आदमी
एक उनमें मैं भी हूँ
परन्तु मैं क्रोध करके
आदमी के लहू से निरर्थक
स्वयं के हाथ रंगना नहीं चाहता
मैं जा रहा हूँ
हाँ जा रहा हूँ।

□ अब्दुल मलिक खान

बस इतना

मैंने कब कहा
कि मुझे कबाब बिरियानी
और काजू किशमिश का कलेवा दो
तीखी सुगन्ध से सराबोर सतरंगी पोशाक दो,
मैंने कब माँगी चमचमाती कार,
फूलों के हार
आलीशान फ्लेट
हीरे की अंगूठी
सोने की चेन
श्वान, लॉन, रम और शेम्पेन···
मैंने तो बस इतना चाहा
कि जब खेतों की थाली में
दुनिया को रोटी परोसने के लिये
मैं धान की फसल रोप रहा होऊं
तब मेरे पेट की ट्यूब
भूख के कांटे से पंक्चर न पड़ी रहे
मेरी पत्नी की तार-तार साड़ी में से झांकते
सौन्दर्य के प्रकाश को
अंधियारे के अनधिकारी दांत जख्मी न कर पाएं

जलती धूल हमारे तलुओं का रंग न बदले
और वक्त का गिरगिट
रंग बदलने पर उतारू हो जाए
तो हम बेमौत न मारे जायें
बल्कि अपने छोटे से घर में
नई सुबह का इन्तजार कर सकें।

□ रूपसिंह राठौड़

आज-कल

लाख फूंक-फूंक कर
पग धरने के बाद भी
फँस जाता है निश्छल मन
खूनी पंजों में—कबूतर की तरह
इसीलिए तो—
बुझा मन लिए
डोलता है सीधा-सादा आदमी,
और—
चेहरे पर खिलखिलाहट है उनके,
जो—दिन दहाड़े—दूसरों की मेहनत चुराते हैं
क्योंकि—
बोजा-बोजा दुश्मन है नेक दिल आदमी का
एक नहीं अनेक,
बैठे हैं ताक में पानी पिलाने वाले,
घी घालने वाले—पूला सरकाने वाले।
अतः आज—
जरूरत है उस उजाले की
जो—
कर सके सामना हर तरह के अंधेरे का

□ अर्जुन 'अरविंद'

आकाश छूने के लिए

एक ही छलांग में
लांघना चाहते हैं
व्यवस्था का समुद्र
मुट्ठियों में भर लेना चाहते हैं आकाश
एक ही क्षण में
कर लेना चाहते हैं
जीवन भर की खुशियों का उपभोग
यही तो भूल करते हैं लोग

इसी होड़ में
रोज बाहर से निखरते हैं
लेकिन भीतर से बिखरते हैं
क्या वे नहीं जानते ?
सफलता के राजमार्ग तक पहुँचने के लिए
पहले
झाड़-झंखाड़ों पर लेटी पगडंडियों पर
चलना पड़ता है
हर सुबह
सूरज को आकाश छूने के लिए
क्षितिज से निकलना पड़ता है।

अपनी
तलाश

रमेशचन्द्र 'चंद्रेश' / कैलाश 'मनहर' / पृथ्वीराज दवे 'निरा
कमला वर्मा / वासु आचार्य/कुमारी केरोलीन जोसफ/भागीरथ
माधव नागदा / राजेन्द्र चौहान / नन्दकिशोर चतुर्वेदी / जनक
पारीक / अशोक कुमार पंत / बाबू 'हँसमुख' / भगवती लाल
रामनिवास सोनी / शकुंतला नायर / कुन्दनसिंह 'सज
गिरधारी सिंह राजावत / मीठालाल खत्री / कमर मेवा
पुष्पलता कश्यप / शिव मृदुल/ रूपनारायण काबरा / चुन्नीला

□ रमेशचन्द्र भट्ट 'चन्द्रेश'

अपनी तलाश है

खो गया हूँ मैं, अपनी तलाश है
सिर्फ अपनी।
ऊपर से नीचे तक खड़ी अभेद्य दीवार
और चारों ओर फैला कंटीला तार
पास ही अपनी उदासी
बाँटता हुआ बाग
दिल में छुपाये किसी प्रतीक्षा की आग
दायें से बायें
ऊपर नीचे षड्यन्त्र करता
कारखानों का धुँआ
जो कभी अपना नहीं हुआ।
एक सूनी कब्रगाह,
जहाँ से जीभ लपलपाता हुआ 'खरगोश'
फिर भी हमें नहीं आता कुछ भी होश
मेरी चारपाई के नीचे
छिपा हुआ एटमबम्ब
और मुँह में दबा अधजली रोटी का टुकड़ा
मेरा यह जीवन—
एक मात्र लाश है। छोड़ गये हैं, अनगिनती लाशों का ढेर
अपनी तलाश है, सिर्फ अपनी।

खो गया हूँ मैं—
एक ज्वालामुखी के चेहरे
बर्फ़ से सर्द जख्मों वाली
दोहरी ज़िन्दगी की कहानी
जो न जीने से डरी, न मरने से
मगर इन बहुरूपिया परिस्थितियों में
पूर्ण सूर्यग्रहण के अंधेरों में
सजदों की दुर्घटना में खो गया हूँ मैं
अपनी तलाश है, सिर्फ़ अपनी।

□ कैलाश 'मनहर'

अन्तर

आज / सुबह सुबह
एक खिला गुलाब देखा
तो / मैंने जाना—
कि तुम मेरे पास ही हो।
तभी किसी शरारती बच्चे ने/
शान्त जल लहरी में / कंकड़ फेंक दिया।
मैं समझ गया कि······
झूठ कितना खूबसूरत होता है/
और / सच······कितना ठोस ?

फैसला

इसी रोशनी ने / कत्ल किया है / मुझे/
दिये हैं···झूठ वायदे
और / छिछली मुस्कानें / दिनरात/
कल मेरे खिलाफ़ हो गयी/
दुनिया / जो तुम्हारी थी/
सोचता हूँ / मैंने बगावत क्यों नहीं (की) करनी चाही ?

दद

यहाँ बोतल/
वहाँ प्याला/
सुराही / जाम / और सागर—
हमारी आँख के सावन को भी/
क्या हो गया है ?…
आओ / तलाशें उसे
कोलतार की सड़कों पर
पता नहीं/
सूरज कहाँ पर/
खो गया है ?…

□ पृथ्वीराज दवे 'निराश'

वर्तिका के नाम

मोम से आवृत—
वर्तिका !

तू—
जल रही है…
क्या, मेरे लिए ?

यह—
तेरा ज्वलन
मेरे लिए आह्वान है
अथवा, तेरा अपना
नैसर्गिक सुख !

यह—
जो 'पिघल' रहा है
वह क्या (?)
मेरा दर्द है……
या, तुम्हारे अश्क
अथवा कि—लहू,
तुम्हारा अपना,
बहता हुआ ……

ओह !
यह जो 'लौ' है
जिसका स्पन्दन
तुम्हारी मुस्कराहट है (?)
अथवा—
मुझ 'अध पंख जले कीट'
के लिए
हर बार गिर जाने पर
नीचे झुक, ऊपर उठने का
संदेश ?......

देख !
अगर, तुझे जलना ही है......
प्रकाश करना हो है......
संदेश देना ही है......
तो सिर्फ—
मुझे ही नहीं
मेरे लिए ही नहीं...
प्रकाश कर !
किन्तु—
सिर्फ मेरे जीवन की
अंधेरी राहों में ही नहीं
रात्रि में ही 'टिमटिमाकर'
क्षणिक
सूक्ष्म दायरे में ही नहीं
यदि—
यही हाल रहा तो
आंधी का अंधड़ औ'
तूफ़ान का जोश
आने के पूर्व ही,
हवा के एक क्षीण

झोंके से ही तू,
बुझ जायेगी।

और फिर—
मेरे जीवन में तो क्या
तेरे अपने जीवन में भी
'अंधकार-ही-अंधकार' व्याप जायेगा···

अतः—
यदि तुझे जलना ही है
देना ही है संदेश
'तिमिर' मिटा ही देना है

तो—
जन-जन के 'अन्तस' में प्रकाश
कर दे,
सिर्फ 'प्रकाश'···

और—
जल कर
मिट कर
गल कर
रोकर भी यह सिखा दे ताकि
अन्धकार को मिटाने के लिए
अन्य दीप कहीं
प्रज्वलित रहे!

□ कमला वर्मा

धोखा

मैं बैठी हूँ
एक गवाक्षहीन कक्ष में,
कई सारे प्रश्न
बाहर पहरा लगा रहे हैं।
सारे पौधे
सूख कर टूट चुके हैं
धरती तप रही है
वसन्तोत्सव के लिए
कागज के फूल
सजाये जा रहे हैं।

लिखने से पहले

जब भी लिखो,
कलम खून में
डुबोकर लिखो,
धब्बों का नहीं
इतिहास का जन्म होगा।

अन्तर

रसोई के बढ़ते हुए
काले धुंए ने जताया
कि अब दम घुट रहा है !
आंगन में
आंधी से बरसती धूल ने
बताया,
कि चेहरा बुझ रहा है।
दरवाजे की बन्द सांकल ने
बताया,
कि बाहर एक खुला मैदान है।
तुमने तो मुझे
कुछ भी नहीं बताया,
तुम तो यूँ ही बदनाम हो—
चार्वाक के दर्शन की तरह।

□ वासु आचार्य

नहीं गया समुद्र

हाँ···हाँ—
नहीं गया समुद्र
न हो बना गुरुतर
पोखर हो गया
लघुतर
बन गया पोखर

जब भी रहा। हरा-भरा
(जानता हूँ—
बारहों मास नही रहता,
पोखर ही हूँ न)
चैत की दुपहरी में
मांढ गई चिड़ियाएं
अपने पर
मेरे भीतर

उड़ गई
दो बूंद
चोंच भर
मैं निहाल हो गया

आया—वह बच्चों का झुण्ड
किलकारियाँ करता गुंजा गया
नहा गया—वह बुड्ढ़ा
छोड़कर थकान
चला गया—ताज़ा होकर

पी गई जल
गाय-बछिया
चली गई रम्भाती
तृप्त होकर
मैं निहाल हो गया

तुम्हें होगा गर्व—समुद्र
समुद्र होकर
मैं तो खुश हूँ
पोखर होकर।

फिर मुट्ठियां भींचता हूं

मैंने तो समझा था—
अब वैसा नहीं होगा
जैसा पहले हो गया था
कि मौत से संघर्ष करता
जख्मी हुआ शब्द
दूर किसी कन्दरा में गहरे खो गया था।

पता नहीं क्यों फिर
पिछले एक अर्से से

मेरे कानों के पास
गूंजने वाले शब्द
कलम की नोक पर आते-आते
तीर लगे पक्षी की तरह
घेर लेते हैं मुझको

मुझे लगता है—
फिर किन्हीं
खून सने पंजों ने
खरोंच तक का निशान छोड़े बिना
दबोच कर फेंक दिया है
मुझे किसी सन्नाटे में

और मैं फिर
अपनी मुट्ठियां भींचता हूं
होठों में कुछ बुदबुदाता हूं ।

□ कु० केरोलीन जोसफ़

प्रश्न देश

माना कि आप बहुत प्यासे हैं
रोम-रोम तृषित
पर ज़िन्दगी का अभिशप्त यक्ष
आपको छूने तक नहीं देगा जल
वह कुछ मूलभूत प्रश्न उछालकर
पेड़ पर औंधा लटक जायेगा
और आपकी तमाम चालबाजियां निरस्त
और नंगी हो जायेंगी
बड़ा खतरनाक होता है
खुद को फन्ने खां समझना
आपकी चाल-ढाल / हाव भाव देखकर
बहुत साफ़ हो जाता है / कि
आपको एक भी उत्तर नहीं मालूम
जलाशय के तट पर मृतवत् प्यासे के प्यासे
जड़ हो गये हैं आप।

लहूलुहान दस्तावेज़

बहुरंगी तितली-सी
आशा / आकांक्षा
फूल से फूल तक फुदकती है
कांटों से उलझ कर बिखर जाते हैं पंख
अक्सर
जहरीले और निर्गन्ध सिद्ध होते हैं फूल
और रंग सिर्फ़ सम्मोहन
दृश्य / अब एक आम घटना है
दरअसल / हममें से हरेक की खोपड़ी
कम-ओ-बेश युद्ध का मैदान बन चुकी है
जहाँ दिन और रात
वाद से प्रतिवाद तक
जद-ओ-जहद जारी है
भ्रूण हत्याओं और हत्याओं का सिलसिला
और फिर
थकान से जन्मे
एकतरफ़ा युद्ध विराम
दरअसल हममें से हरेक की ज़िन्दगी
एक दस्तावेज़ है
गुप्त और लहूलुहान।

□ भागीरथ भार्गव

उस समय

सच, तब मैं—मैं नहीं होता हूँ
कुछ जादुई स्वर, कुछ तिलिस्मी आवाज़ें
कुछ अबूझे संकेत, कुछ वायवी आकृतियाँ
मुझे ऊपर—बहुत ऊपर उठा ले जाती है
और फिर मैं हर दिशा में होता हूँ
अपने आपको अनुभव करता—कभी एक बिन्दु
और कभी एक सम्पूर्ण भू-खण्ड।

कभी एक बूंद को समाहित किए
कभी एक विशाल मेघ को समेटे हुए
चारों ओर पगलाया घूमता हूँ।

कभी लगता है—यहाँ सभी कुछ मेरा अपना है
तब कल्पित प्रियाओं के साथ
दूर-दूर तक बांहों में बांहें डाले
चहल कदमी करता नज़र आता हूँ
तब समस्त गंध, रस, आस्वाद को
आत्मसात किए, मैं बहुत कुछ हुआ करता हूँ।

और कभी अपने चारों ओर फैले अपरिचितों के मेले में
मैं अपने को बहुत असहाय और अकेला पाता हूँ—
कातर।
फिर ऐसा होता है—
मैं अपनी समस्त चेतना को केन्द्रित कर
पूरे स्वरों के उभार के साथ
उन घुटे-घुटे लोगों के लिए
देना चाहता हूँ—एक सामूहिक चेतना का स्वर।
छोड़ देना चाहता हूं—अपने आपको उनके बीच
सिर्फ एक इकाई बनने के लिए।

ऐसा जब-जब होता है
तब-तब मैं—मैं नहीं होता हूँ
मैं कुछ होता हूँ—या कुछ नहीं होता हूँ
या फिर बहुत कुछ होता हूँ।
सच, तब मैं—मैं नहीं होता हूँ।
एक सम्पूर्ण सृष्टि, एक ब्रह्मांड होता हूँ।

□ माधव नागदा

अहं

वह मेरे पलंग पर बैठा था
मैं जमीन पर खड़ा था
मुझे देखकर उसने कान खड़े कर लिए
खुद पड़ा था
आज कुत्ते का स्व
मनुष्य के अहं से अड़ा था।
मैंने हथियार धारण कर मोर्चा सम्भाला
पलंग का बादशाह स्थिति समझकर
थोड़ा सा हिला
मुझे अपने अहं को बचाने की चुनौती थी
मुकाबला कड़ा था
मैं गुर्रा रहा था
वह पलंग से उतरकर
दुमदबाये खड़ा था।
मैंने डण्डा उठाया
हवा में घुमाया
दे मारा उसकी खोपड़ी पर
कुछ ही देर में कुत्ता मर गया
उसका आत्मविश्वास जिन्दा था

ग्रौर
मेरे ग्रहं का डण्डा
टुकड़े-टुकड़े होकर
बिखरा पड़ा था।

□ राजेन्द्र चौहान

निस्पृहता

तरंग—
तट से टकराती
हरी घास का स्पर्श कर
पुलकित हो
लौट जाती।
मार्ग में आये सूखे पत्तों को
किनारे लगाती
फेन-राशि उछालती
उमंग भरे हृदय से
आगे बढ़ जाती।
तरंग…
अपनी लय में बेसुध है
उसे क्या मालूम
कि तली का कीचड़ उदास है।

विवशता

तट—
नदी की गहराई को
जानता है
उसकी हर लय को
पहचानता है।
फिर भी कटता रहता है लहरों की चोटों को
पी जाता है।
विवश है,
प्यास से
बंधा है!

☐ नन्दकिशोर चतुर्वेदी

बैसाखियां

जलते मरुस्थली सन्नाटे में
अचानक उग आयी है
कुछ मर्मस्पर्शी ध्वनियां
गुद-गुदी से भरे पुष्पों की

मन की अभेद्य प्राचीरों को भेद कर
उनका तिलस्मीपन
वर्षों से कैद सुख को
खींच कर ले आया है
खुली हवा और स्निग्ध धूप में
सारी बस्तियों पर
बरसने लगा है कलरव मूसलाधार
विचारों की शुष्क धरा पर
(अब जहां फिसलन है)
चल पड़ा चिंतन
हमारा पंगु सत्य
शपथ और ढोंग की
पुरानी बैसाखियों के सहारे।

□ जनकराज पारीक

रचनाधर्मी

ग्रौर कुछ ठहरो
अभी मैं व्यस्त हूँ।
मुझको अभी आकार देना है
समय के पत्थरों को
मैं नहीं यह चाहता
ये मूक पत्थर
ग्रादमी के हाथ में
पथराव के दिन
बेजुबां हथियार हों।
चाहता हूँ ग्रादमी के वास्ते ये
स्नेह, श्रद्धा से भरे ग्राकार हों।
ग्रौर ये प्रस्तर न खेलें
खून की होली,
झुकें सर सामने इनके
वैयक्तिक ग्रास्था ले
ये सिखायें ग्रादमी को
स्नेह की बोली।
मुझे ग्राकार देने दो।
ग्रभी मैं व्यस्त हूँ
कुछ ग्रौर ठहरो
प्रस्तरों को
ग्रास्था की धार देने दो,

सूर्यहीन

समूचे आसमान को
अपने सूटकेस में भर
वह तहखाने में उतर गया
और हमारे घर-बस्ती-संसार को
अँधेरे में तब्दील कर गया।
सूरज चाँद सितारे उसकी चोर जेब में थे,
घुताई आँखों में
और रोशनी जूते की नोक पर।

उसके वैभव पर
मेरा पड़ौसी उन-झुन हँसी हँसा
अवसाद में डूबी हुई
जिसे देखने के लिए
मैंने अपनी मुट्ठियों में अंगारे भर लिए
और जाना
कि फूटते फफोलों के पानी में
बड़ी मारक शक्ति होती है
जो अंगारों को राख, राख को कीचड़,
कीचड को घर और बस्ती में बदल देती है।

हँसो, उस बस्ती में चाहे जितना हँसो
कोई देख-सुन नहीं पाएगा।
सूरज अपनी शाश्वत-सनातन परंपरा से
तहखाने में उगेगा
और बंदी आसमान में डूब जाएगा।

□ अशोककुमार पंत

चार चित्र

सुबह

जाने-अनजाने
रख जाती है सिरहाने
रोज सुबह—एक नया दर्द ।
अनचीन्ही लगती है
अपनी ही सांस
कमरे में भर जाती है तीखी दुर्गन्ध
एक ऐसी दुर्गन्ध
किसी सड़े शव की—
जलने जैसी बास
लेकिन; फिर वही परिचित क्रम
वही सीधी वंचना की राह
वही कल्पित भ्रम
वही झूठा दर्प
और आरोपित चेहरा
भीतर से लाल, मगर
ऊपर से जर्द
रोज एक नया दर्द ।
काश ! एक अनहोनी हो जाती
कि सुबह एक दूसरी तरह की सुबह हो जाती ।

दुपहर

नगरों से गाँव
और गाँवों से नगर
फैली है एक जैसी दुपहर।
इतनी रोशनी
कि सारी चीजें अस्पष्ट
सड़क और पेड़
और ईख
और आदमी
नहीं इनमें कोई भी फ़र्क़
रोशनी से चौंधियायी आँखों पर—
पड़े इतने आवरण
भूल गया तर्क
कहीं नहीं कोई भी अन्तर
फैली है एक जैसी दुपहर
नगरों से गाँवों
और गाँवों से नगर
अंधेर ही अंधेर।

शाम

मेरी ही हथेलियों पर
मेरा ही नाम
बार-बार लिख जाती शाम।
अर्थहीन लगते सम्बोधन
मिट जाना रंगों का
सारा सम्मोहन

रह-रह कर घेर लेती—
अशुभ आशंकाएं;
ऐसी मन:स्थितियां;
कहां जाएं ?

रात

झल्ला कर फेंक दिया
एक पृष्ठ काला
सांझ ने;
रात लगी रुक-रुक कर गिनने तारे
झूठे सन्दर्भ
और असफल यात्राएं
कुण्ठित संकल्प
उच्चाकांक्षाएं
क्षीण अहंकार
इन थोड़े से शब्दों की—
आवृत्ति वार-बार।

□ बाबू 'हंसमुख'

अपना आकाश

अन्धेरी रात में / देखकर
आकाश की ओर / निहारा
धरती को
तो लगा कि / आकाश / नगेटिव फोटो फिल्म है
धरती की / और
ब्रह्माण्ड ने उतारा है उसे / सूरज की रोशनी में
ये टिमटिमाते तारे / बोध कराते हैं,
धरती पर बनते-बिगड़ते भाग्यों का
उनके साथ / टूटते उल्का पिण्ड
धरती के मिटते हुये इन्सान हैं।
लेकिन / तारों के प्रकाश के बीच
अन्धेरे का धुंआ / आदमी के दुःख दर्दों का
सघन जाल है।
और अब मैं सोच रहा हूं
इनसे मुक्ति पाने के लिए
उल्का पिण्ड की भांति / टूट कर
मिट जाना / अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ।

◻ भगवतीलाल व्यास

यज्ञ-कुण्डों की परम्परा में

काटे ही कटेगा
यह पहाड़।
इसकी छाया में बैठ कर
ऊँचाई और कठोरता का जिक्र भर
करने से
हवाएँ सदय नहीं हो जाएँगी
हमारे लिए।
प्रयत्न हवाओं को दया
पाने के लिए नहीं;
उन्हें परास्त करने के लिए हों।
किसी भी देवता की स्तुति से
मुरमुरी नहीं होती चट्टानें,
चट्टानों को तोड़ने का एक ही उपाय है—
कुदाल करो अपने हाड़ !
हाँ, हाँ रास्ता टेढ़ा
और भयानक है
कोई सरोवर नहीं
जहाँ बैठ कर सुस्ता लें।
मगर यज्ञ कुण्डों की
परम्परा में यह सब होता कहाँ है ?

एक अहर्निश ताप-तप
और अग्नि-यात्रा
पग न रुकें तो
कलुष खुद-ब-खुद
गिरेंगे खाकर पछाड़।
फूलों की रंगत पर कभी
दहशत हावी हुई है ?
डालियाँ इसी नीम अँधेरे में
हर रात चुपचाप
नए पत्तों की बर्छियाँ उगा कर
निश्चिन्त सोती हैं
शायद इसीलिए बड़े तड़के
कली-दर-कली
खुल पड़ते हैं
रोशनी के किवाड़।

□ भगवतीलाल व्यास

यज्ञ-कुण्डों की परम्परा में

काटे ही कटेगा
यह पहाड़।
इसकी छाया में बैठ कर
ऊँचाई और कठोरता का जिक्र भर
करने से
हवाएँ सदय नहीं हो जाएँगी
हमारे लिए।
प्रयत्न हवाओं को दया
पाने के लिए नहीं;
उन्हें परास्त करने के लिए हों।
किसी भी देवता की स्तुति से
भुरभुरी नहीं होती चट्टानें,
चट्टानों को तोड़ने का एक ही उपाय है—
कुदाल करो अपने हाड़!
हाँ, हाँ रास्ता टेढ़ा
और भयानक है
कोई सरोवर नहीं
जहाँ बैठ कर सुस्ता लें।
मगर यज्ञ कुण्डों की
परम्परा में यह सब होता कहाँ है?

एक ग्रहर्निश ताप-सँप
और अग्नि-यात्रा
पग न रुकें तो
कलुष खुद-ब-खुद
गिरेंगे खाकर पछाड़ ।
फूलों की रंगत पर कभी
दहशत हावी हुई है ?
डालियाँ इसी नीम अँधेरे में
हर रात चुपचाप
नए पत्तों की बछियाँ उगा कर
निश्चिन्त सोती हैं
शायद इसीलिए बड़े तड़के
कली-दर-कली
खुल पड़ते हैं
रोशनी के किवाड़ ।

□ रामनिवास सोनी

जीवन और जीना

कहते हैं कि जीवन जीना भी एक कला है।
सच है
साँस तो सभी लेते हैं मगर दूसरी बात है जीना
मजबूरी से जीना जीना नहीं है,
दर्द सबका है, कोई नगीना नहीं है
कि खुद ही पहन लिया जाय।
आदमी लंबी आयु पाकर भी जीता नहीं है,
जीने का बहाना भर करता है।
जीना तो उसी का है
जो अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीता है।
जीवन की प्यास लंबी आयु से कभी नहीं बुझती—
ओस चाटने से तृषा शान्त नहीं होती—
वक्त को काटना और बात है।
यदि
परिवर्तन नहीं
जीने का मंत्र,
साधना का तंत्र—
तो जीवन का व्याख्यान अनर्गल है

□ शकुन्तला नायर

निस्सहाय हम

हमने
गुजरे हुए समय को
मुट्ठी में कैद कर रखा है
और क्षितिज की ओर ताकते हुए
चुपचाप बैठे हैं

हम
कुछ सोचते हैं
पर कह नही पाते
और
व्यक्त हो जाते हैं वे
जिनका कोई
वास्ता तक नही होता

हम
जब हँसना चाहते हैं
तब इर्द-गिर्द का
माहौल देखकर
हमारी आँखों में
छल छला आता है पानी

□ रामनिवास सोनी

जीवन और जीना

कहते हैं कि जीवन जीना भी एक कला है।
सच है
साँस तो सभी लेते हैं मगर दूसरी बात है जीना
मजबूरी से जीना जीना नहीं है,
दर्द सबका है, कोई नगीना नहीं है
कि खुद ही पहन लिया जाय।
आदमी लंबी आयु पाकर भी जीता नही है,
जीने का बहाना भर करता है।
जीना तो उसी का है
जो अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीता है।
जीवन की प्यास लंबी आयु से कभी नहीं बुझती—
ओस चाटने से तृषा शान्त नहीं होती—
वक्त को काटना और बात है।
यदि
परिवर्त्तन नहीं
जीने का मंत्र,
साधना का तंत्र—
तो जीवन का व्याख्यान अनर्गल है

□ शकुन्तला नायर

निस्सहाय हम

हमने
गुजरे हुए समय को
मुट्ठी में कैद कर रखा है
और क्षितिज की ओर ताकते हुए
चुपचाप बैठे हैं

हम
कुछ सोचते हैं
पर कह नहीं पाते
और
व्यक्त हो जाते हैं वे
जिनका कोई
वास्ता तक नहीं होता

हम
जब हँसना चाहते हैं
तब इर्द-गिर्द का
माहौल देखकर
हमारी आँखों में
छल छला आता है पानी

और हम
एक मशीन की तरह
पूरी करते रहते हैं
अपनी दिनचर्या
निभाते रहते हैं अपना दायित्व
और मुट्ठी में कैद समय
गुजरता रहता है
चुपचाप।

□ कुन्दनसिंह 'सजल'

बदलाव

पुराने वर्ष का कलेंडर हटाकर
नये वर्ष का कलेंडर कमरे में लगा लेने से ही
सब कुछ नया नहीं हो जाता, दोस्त।
अगर बाहरी वस्तुओं के बदलने से ही
सब कुछ बदलता तो
तुमने अब तक न जाने
कितने वस्त्र बदले
मकान बदले
चारपाइयां बदली
यहां तक कि खाद्यान्न बदले हैं
मगर तुम वही हो।
वर्ष के साथ अपने आपको
नया बनाने के लिए
तुम्हें अपना मानस बदलना होगा
और विगत पर सोचकर
आगत को नूतन व सुखद बनाने के लिए
दृढ़ संकल्पित होना होगा।
और इस शुरुआत के लिए
तुम्हें किसी की प्रतीक्षा नहीं करनी है।

यह शुरुआत तुम्हें अपने से करनी है।
और संकल्प के नये सूरज को रोशनी
पूरब से नहीं
तुम्हारे घर से बिखरनी है।

□ गिरधारीसिंह राजावत

जीवन और गुलाब

आपने गुलाब देखा होगा ?
जीवन
गुलाब
कांटे
सौरभ
दुख-सुख
एक साथ विद्यमान
कौन किस को चुभता है ?
सौरभ को
समीर
गुलाब को कांटे
सुख को दुख चुभ जाते हैं।

□ गोठालाल खत्री

सही अर्थ की तलाश

पंक यानी कीचड़
और पंकज ?
यानी कीचड़ में जन्मा हुआ
लड़का बोला
पंकज यानी मच्छर…
अध्यापक कहीं खो गया
उस सही अर्थ के साथ
जो कीचड़ और मच्छर को
साथ लेकर
'पंकज' ने बनाया
लड़का अकेला खड़ा है
अपने नये अर्थ के साथ।

☐ कमर मेवाड़ी

मुक्ति पर्व

तुमने जिन अन्धेरे खण्डहरों में
धकेल दिया है
वहाँ से लौट पाना कितना कठिन हो गया
कितने बेबस हो गये हैं दिन
कितनी बोझिल और उदास हो गयी हैं शामें
अन्धेरा इतना घना है
कि रोशनी का एक शहतीर भी
बरसों तक नहीं पहुँच सकता
हम तक
फिर भी प्रतीक्षा रत हैं
कि कभी न कभी
उन अन्धेरे खण्डहरों तक
कोई सड़क अवश्य आएगी
किसी न किसी दिन
सूरज का प्रकाश
उन खण्डहरों तक जरूर पहुँचेगा
और हम
उन अन्धेरे खण्डहरों की कैद से
आजाद हो जाएंगे
और वह दिन
हमारा मुक्तिपर्व होगा
जब तक वह दिन नहीं आएगा
तब तक हम उस दिन का इन्तजार करेंगे

□ पुष्पलता कश्यप

इब्तदा

सब कुछ कितना असाधारण है ?
स्वयं की पहचान का वह पेड़
इतना बड़ा हो गया
अस्तित्व की सुगन्ध के साथ
कि पत्ते / फूल / फल
उग आये
इब्तदा ऐसे भी होती है

बता नहीं सकती
किस तरह पूरी जिन्दगी सामने बिछी है
और सब कुछ कितना असाधारण है ?

□ शिव 'मृदुल'

मृत्यु

समस्याओं के यात्री
शरीर की बस में
सवार थे,
जिसका
ड्राइवर—प्राण
आज अपनी सीट से
उतर कर अलग हो गया है
बस पड़ी है
यात्रियों का अस्तित्व खो गया है।

मुक्ति बोध

आज साहित्यकार
जीते जी
भूखा और दुखी
जैसे कि—मुक्ति भोग
किन्तु

मरने के बाद
उसी पर लिखे जाते हैं
प्रबन्ध और शोध।

श्वान

श्वान !
तुम कितने महान् !
स्वामी भक्ति के
साक्षात् अवतार हो
आधुनिक
इन्सान के सम्पर्क में
रहने के बाद
आज भी वफ़ादार हो।

□ रूपनारायण काबरा

जीवन-स्पेक्ट्रम

जीवन कटुतर
जीवन मधुतर
संवेदन की श्वांस है,
भूल भुलैया में भटके से
मानव मन की आस है।

व्यक्तित्वहीन उड़ते बादल सा
आकस्मिक दामिनी दमक सा
शहद बिन्दु सा
पुष्प गन्ध सा
एक भूल सा
सुमन शूल सा
इन्द्रधनुष के बहुरंगों सा
ठिठुराता हेमन्त अगर
तो आता भी मधुमास है।

रंग रंग बहुरंग यह जीवन
रंगों की सरगम लेकर के
चित्र बनाता नये स्वरों से
राग ढालता नये रंगों की,
कौन चितेरा ?

कौन है गायक ?
सब कुछ मुखरित
सभी मौन है,
समझा वह भी खो जाता है,
खोकर के ही समझे सब कुछ
ऐसा ही विश्वास है,
दूर दूर लगता है सब कुछ
लेकिन फिर भी पास है।
जीवन कटुतर,
जीवन मधुतर
संवेदन की श्वांस है।

☐ चुन्नीलाल भट्ट

बुझे दीप की बाती !

रोशनी, चमक
और
अमिट सी एक आभा,
हर कोई ताकता था
उसी लड़खड़ाती सी लौ को।
अन्धकार
और, इस कालिमा में
कनक सी एक किरण,
हर कोई बखानता था
उसी मरियल सी लौ को।
पर तुम?
त्यागी, सत्व समाविष्ट सी
स्वयं को जला कर रह गई।
परोपकार
और
करुणा की प्रवाहिनी
असह्य वेदना को सहती
स्वयं मूक बनकर रह गई।

निर्मोही
और
निरहंकारी
बुझे दीप की बाती,
तुम !
सिर्फ, अश्क बहाकर रह गई।

स्थिति के
आस-पास

बुलाकीदास बावरा / मोहम्मद सदीक / बी० एल० 'अरविन्द' / सावित्री परमार / अजीज आजाद / सांवर दइया / श्यामसुन्दर भारती / कुंदनसिंह सजल / रामस्वरूप परेश / प्रेम मधुकर / अरनी रॉबर्ट्स / कैलाश 'मनहर'

□ बुलाकीदास बावरा

गज़ल

छोड़ के सहूलियत, इधर को आइये,
आ के आईने से फिर नज़र मिलाइये।

इश्तहार से नहीं बंटती है रोशनी,
आप अपने हाथ से दीया जलाइये।

उठते हुए तूफ़ान लाये कहर ही कहर,
आपके शिकवे हैं कि आप हल बताइयें।

हाँ, हमारे देश को नासूर लग गये,
हरफ़नीर हैं कोई दवा बताइये।

मुमकिन नहीं है आदमी भीड़-भाड़ में,
आप आदमजात आदमी बनाइये।

ढली हुई है सूरतें उखड़े हुए कदम,
फिर शरीर के लिए बस्तर बनाइये।

फिर हमारी आग के पैबन्द टूटते,
लगे कि दीपक राग की रियाज चाहिये ।

उलझनों को सौंपना आसान 'बावरा',
खिताब आपका कि आप आज़माइये ।

□ मोहम्मद सदीक

गज़ल

इरादों में इधर तकरार क्यूं है।
नजर के सामने दीवार क्यूं है॥

बताओ नाखुदाओ बात क्या है।
ये बेड़ा आज भी मझधार क्यूं है॥

सुना सामन्त को दफ़ना दिया था।
सरों पर आज भी तलवार क्यूं है॥

भयानक ख्वाब की ताबीर है तू।
तू अपनी जात से इनकार क्यूं है॥

जमीं की आस फिर पपड़ा रही है।
ये सावन हर बरस बेकार क्यूं है॥

चरक, धनवंतरी, लुक़मान सब हैं।
मेरी सरकार फिर बीमार क्यूं है॥

□ बी० एस० 'अरविन्द'

चर्चा गाँधी का

राजघाट से राजनीति तक होता चर्चा गाँधी का,
देवालय से मदिरालय तक होता चर्चा गाँधी का।

घायल होकर सिसक रहा है रामराज्य फुटपाथों पर,
मखमल के पर्दों के पीछे होता चर्चा गाँधी का।

हाट-हाट में, गलियारों में लगी नुमाइश लाशों की,
राजमहल के दरबारों में होता चर्चा गाँधी का।

चाँद दबा है तहखानों में, सूरज बन्द तिजोरी में,
हर अँधियारी दीवाली पर होता चर्चा गाँधी का।

भूखे पेट लिये सड़कों पर भीड़ खड़ी है पागल सी
लाल किले की दीवारों से होता चर्चा गाँधी का।

टोपी रंग बदलती जाती हर सत्ता-परिवर्तन में,
चरखे से लेकर खादी तक होता चर्चा गाँधी का।

मिट्टी वाले पूछ रहे हैं, कहाँ गयी वह आजादी ?
आसमान की ऊँचाई से होता चर्चा गाँधी का।

□ सावित्री परमार

ग़ज़ल

ख़ुशियां ख़रीद कर न अपनी जेब भर सके,
आकाश कंधों पर न ज्यादा देर रख सके।

रातें जुही के फूल दिन चंदन समझ लिये,
जब वक्त आया धूप के तेवर न सह सके।

किसको पता था स्वप्न पलकें छील डालेंगे,
टूटे बहुत से इन्द्रधनु आंसू न बह सके।

किस्मत की बात देखिये कैसा रहा मज़ाक,
सागर चले खंगोलने लहरें न गह सके।

(२)

जिन्दगी पर रहम कैसे अजूबे हुए हैं,
पेड़ लम्बे आदमी बौने हुए हैं।

दिन पिघलता विवशताओं की सलाखों पर,
दर्द पूरी रात को ओढ़े हुए हैं।

सो रहीं सड़कें दरारों की दरी पर,
तंग सारे घरों के कोने हुए हैं।

इमारत की नीव का प्यासा पसीना,
उमर के सब घाट रेतीले हुए हैं।

फाइलों ने निगल डाली नजर की मंजिल,
बहरूपिये क्षण शाम तक घेरे हुए हैं।

खिड़कियों पर सख्त पहरा वर्जना का,
फ़र्श पर सब शब्द बरफ़ीले हुए हैं।

□ अज़ीज आज़ाद

ग़ज़ल

भरा हुआ-सा शहर है श्मशान हो गया,
भटकी हुई रूहों का सा मकान हो गया।

बढ़ती हुई इस भीड़ में रिश्तों के जाल में,
जंगल के पेड़ की तरह इन्सान हो गया।

टांगी हुई है तख्तियां पहचान के लिये,
आदमी जैसे कोई सामान हो गया।

बढ़ने लगी है इस तरह आपस में दूरियां,
अपने ही घर में आदमी अनजान हो गया।

पत्थर की दीवारों में अहम् पालता रहा,
कैदी को किस तरह का अभिमान हो गया।

(२)

अब मिलने के नाम पे सलाम रह गये,
आदमी कहां हैं कोरे नाम रह गये।

नाम के पोस्टर लगा के पुज गये सभी,
पुजने के जो हक़दार थे अनाम रह गये।

मुद्दत हुई है देश तो आजाद सुना था,
हम आज भी गुलाम के गुलाम रह गये।

चांद को वो किस तरह पायेंगे दोस्तो,
रोटी तक जो पाने में नाकाम रह गये।

लोग खाली पेट लेकर कूच कर गये,
अनाज के भरे हुए गोदाम रह गये।

□ सांवर दइया

ग़ज़ल

हुए हैं कैसे उजाले देखो।
दिशाओं के रंग काले देखो !

खूब छूट मिली हमें कहने को,
लगे हैं जुबां पर ताले देखो !

बाहर रहते खुश, घर में उदास,
कैसे हैं ये घर वाले देखो !

फिर बनने चले हैं वे मसीहा,
छीनते रहे जो नवाले देखो !

धूप से क्या शिकायत करें हम,
छांव में पड़े जब छाले देखो !

(२)

हमारे हम-सफ़र ये रिसाले हुए,
रखते हरदम सवाल उछाले हुए !

ये लोग दिन को दिन नहीं कहेंगे,
ये लोग तो हैं उनके पाले हुए !

हमारे घर में शमा न रही, न सही.
अंधेरी गलियों में तो उजाले हुए !

फिर भी आगे बढ़ता रहा कारवां,
उखड़ी सांसें पांव में छाले हुए !

खुश था मैं सलीब पर, देखा मैंने,
हजारों लोग मशाल सम्भाले हुए !

□ श्यामसुन्दर भारती

ग़ज़ल

हालात के मारे हैं हालात से डरते हैं,
मिट्टी के घरौंदे हैं बरसात से डरते हैं।

जो बज़्म में कह दी है उस बात से क्या डरना,
लब तक जो नहीं आई उस बात से डरते हैं।

इस की टहनी के पत्तों पे पहुंच जाएं,
हम लोग मगर अपनी औक़ात से डरते हैं।

इस धूल की बस्ती में मौसम है हवाओं का,
उस बात का खतरा है जिस बात से डरते हैं।

गो चांद-सितारों की महफ़िल भी हमीं लेकिन,
हम हिज्र के मारे हैं और रात से डरते हैं।

इन तेरे इरादों पर उम्मीद तो है लेकिन,
हम लोग खयालों के महलात से डरते हैं।

□ कुंदनसिंह सजल

ग़ज़ल

दीप से हर घर सजाने का इरादा क्या हुआ ?
बाग ऊसर को बनाने का इरादा क्या हुआ ?

मुल्क में फैली सियाही सहर करने के लिए—
इक नया सूरज उगाने का इरादा क्या हुआ ?

आज भी फुट-पाथ पर भूखी, विवश है जिंदगी—
भूख की अर्थी उठाने का इरादा क्या हुआ ?

झोंपड़ी का, जो अंधेरे से, अभावों से घिरी—
महल से परिचय कराने का इरादा क्या हुआ ?

देश की भावी उमंगें पूछती हैं आपसे—
स्वप्न को सच कर दिखाने का इरादा क्या हुआ ?

वायदों से पीढ़ियों को आप बहलाते रहे—
ये जमीं जन्नत बनाने का इरादा क्या हुआ ?

□ रामस्वरूप परेश

गज़ल

वक्त की ग्रारतो के दीये हैं हम,
कैसे जमाने के मसीहे हैं हम।

महानता की जिल्दों में सजे सजे,
स्वार्थों के धागों से सिये हैं हम।

किसी के लिए जिन्दगी होगी यारो,
यहां तो जिंदगी के लिए हैं हम।

भला क्या दे सकेंगे वे औरों को,
सिर्फ़ अपने ही गम पिये हैं हम।

लकीरों में अगर बंटकर ही रहे,
तो सोचो आदमी किसलिए हैं हम

□ प्रेम मधुकर

कैसी यह गंध ?

कैसी यह गंध घुली,
कैसा वातास ?
और बढ़ी, बहुत बढ़ी,
सागर की प्यास।

सूरज मछियारे का किरणों का जाल।
चांदी की टोह लिये हर दिन वाचाल।
भाग रही धूप,
कहाँ इसका आवास ?

दिन ढोता हमको या हम ढोते दिन।
हर घंटा दीमक है हर क्षण है पिन।
चुभते ही रहते हैं,
तीखे आभास।

☐ धरनी रॉबर्ट्स

ग़ज़ल

जानवर भी अब सहमे-सहमे से रहते हैं,
सुना है कि यहां इंसानों की बस्ती है।

जिन्दगी का हर मोड़ एक प्रश्न है,
चाहे जितनी ले लो मौत बहुत सस्ती है।

अंधेरा तो फिर भी सुहा जाता है कुछ,
पर रौशनी आंखों को बहुत चुभती है।

हथेलियों की रेखाओं में भाग्य देखते हैं,
लोगों की किस्मत भी कुंडलियों में ढलती है।

जिन्दगी की परिभाषा बहुत स्पष्ट है,
नदी किनारे लाश धू धू जलती है।

□ कैलाश 'मनहर'

झरोखा है यारो

उजाला नहीं है ये धोखा है यारो।
इसी ने तो सूरज को रोका है यारो॥

जो डूबेगी मंझधार ले जाके हमको,
अनेकों सुराखों की नौका है यारो॥

लो ! पतझड़ के साथी चमन में घुसे हैं।
चमन है हमेशा बहारों का यारो॥

हैं छलिया लफंगे ये 'प्रेमी' हमारे,
इन्हें खत्म करने का मौका है यारो॥

जो घर हमने मेहनत से कल ही बनाया।
रक़ीबों का उस पर झरोखा है यारो॥

कवि परिचय

मोड़सिंह 'मृगेन्द्र', स० अ०, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, घड़ा, वाया धमोतर जिला चित्तौड़गढ़।

रमेश 'मयंक', स० अ०, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, आरनी जिला चित्तौड़गढ़।

सांवर दइया, जेल रोड, बीकानेर।

मनमोहन झा, प्रधानाध्यापक, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, खमेरा (बांसवाड़ा)।

बाबू 'हंसमुख', भारतीय न्यू कालोनी, मनोहरपुर, जयपुर।

मदनलाल दाधिच प्रधानाचार्य, पीरामल उच्च माध्य० विद्या० बगड़।

कु० खुशाल श्रीवास्तव, स० अ०, पीरामल उच्च माध्य० विद्या०, (बगड़ झुन्झुनू)।

भागीरथ भार्गव, ८६, आर्यनगर, अलवर।

मुख्तार टोंकी, प्रधानाध्यापक, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, हतोना (टोंक)।

मेवाराम कटारा 'पंक', स० अ०, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, नगला, जिला भरतपुर।

फतहलाल गुर्जर 'अनोखा', सूरजपोल, जाट गली, कांकरोली (उदयपुर)

हेमराज शर्मा 'शिशु', राजकीय माध्यमिक विद्यालय, अम्बामाता, उदयपुर

रामनिवास लुवाड़िया 'विश्वबंधु', राजकीय माध्यमिक विद्यालय, निम्बाहेड़ा (चित्तौड़गढ़)।

प्रेम दीवाना पंछी, स० अ०, पो० नांगल कोजू वाया इटावा भोपजी, जिला जयपुर।

रश्मि गुप्ता, स० अ०, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, मेनसर (बीकानेर)।

भगवतीप्रसाद व्यास, चन्द्रविलास, बड़ीसादड़ी, जिला चित्तौड़गढ़।

नारायण भारती, राजकीय गुरु गोविंदसिंह उ० मा० विद्यालय, उदयपुर।

नन्दकिशोर चतुर्वेदी, पो० पाछुन्दा वाया बेगूं जिला चित्तौड़गढ़।

हरीश व्यास, गोपालगंज, प्रतापगढ़, राजस्थान।

चतुर कोठारी, स० अ०, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, राजसमंद (उदयपुर)।

शिव मृदुल, स० अ०, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, चित्तौड़गढ़।

श्रीनन्दन चतुर्वेदी, १४/३१६, बजाजखाना, घंटाघर, डाकोतपाड़ा, कोटा-६।

जगदीश सोनी

शरनी रॉबर्ट्स, स० अ०, राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, रामसर वाया नसीराबाद (अजमेर)।

सुरेश पारीक 'शशिकर', स० अ०, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, हुरड़ा (भीलवाड़ा)।

अब्दुल मलिक खान, प्रेस रोड, सिंधी कोलोनी, भवानी मंडी, (झालावाड)।
रूपसिंह राठौड़, स० अ०, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, बास धासीराम (झुन्झूनू)।
अर्जुन 'अरविंद', काली पल्टन रोड, टोंक।
रमेशचन्द्र भट्ट 'चण्द्रेश', मोहल्ला नीम घटा, डीग (भरतपुर)।
कैलाश 'मनहर', स्वामी मोहल्ला, मनोहरपुर (जयपुर)।
पृथ्वीराज दवे 'निराश', स० अ०, रा० उ० प्रा० विद्यालय, जीवाणा वाया सायला (जालोर)।
कमला वर्मा, सरस्वती कालेज के पास, कोट गेट के भीतर, बीकानेर।
वासु आचार्य, बोहती चौक, बीकानेर।
कु० कैरोलीन जोसफ, कंधारवाड़ी, बांसबाड़ा।
माधव नागदा व० अ०, रा० उ० मा० विद्यालय, चावण्ड जिला उदयपुर।
राजेन्द्र चौहान, स० अ०, ज्ञान ज्योति उच्च माध्यमिक विद्यालय, श्रीकरणपुर।
जनकराज पारीक, प्र० अ०, ज्ञान ज्योति उच्च माध्य० विद्यालय, श्रीकरनपुर (गंगानगर)।
अशोककुमार पंत, व० अ०, राज० उ० मा० विद्यालय, पो० आव तह० कामा जि० भरतपुर।
भगवतीलाल व्यास, व्याख्याता, लोकमान्य तिलक टी० टी० कालेज, डबोक (उदयपुर)
रामनिवास सोनी, भगत जी की पोल, मेड़ताशहर जिला नागौर।
शकुन्तला नायर, प्रा० वि० बागडोला, पचायत समिति, राजसमन्द, जिला उदयपुर।
कुन्दनसिंह सजल, स० अ०, राज० मा० विद्यालय, पाटन, सीकर।
गिरधारी सिंह राजावत, रा० मा० विद्यालय, कोलिया, नागौर।
मीठालाल खत्री, रा० प्रा० विद्यालय, सांडबाव, जालोर।
कमर मेवाड़ी, चांद पोल, काकरोली, जिला उदयपुर।
पुष्पलता कश्यप, कचहरी पो० आ० के निकट, जोधपुर।
बुलाकीदास बावरा, सूरसागर के पीछे, बीकानेर।
मोहम्मद सदीक, व० अ०, शंकर भवन के पीछे, रानी बाजार, बीकानेर।
बी० एल० अरविन्द, व० अ०, रा० उ० मा० वि०, चेचट (कोटा)।
सावित्री परमार, श्री महावीर उ० मा० विद्यालय, जयपुर।
अजीज आजाद, मोहल्ला चूनगरान, बीकानेर।
श्यामसुन्दर भारती, रा० उ० मा० विद्यालय, गुढ़ावालोतान, जिला जालोर।
रामस्वरूप परेश, सेठ पीरामल उ० मा० विद्यालय, बगड़ (झुन्झुनू)।
प्रेम मधुकर, स० अ०, रा० उ० प्रा० विद्यालय, बामला (कोटा)।
रूपनारायण काबरा, व० अ०, रा० उ० मा० विद्यालय, जोबनेर (जयपुर)।
चुन्नीलाल भट्ट, स० अ०, रा० मा० वि०, भीलूड़ा (डूंगरपुर)।

शिक्षक दिवस प्रकाशन

सम्पूर्ण सूची

1967 :

1. प्रस्तुति (कविता), 2. प्रस्थिति (कहानी), 3. परिक्षेप (विविधा), 4, सालिक ए गोहर (उर्दू), 5. दार की दावत (उर्दू)

1968 :

6. कैसे भूलूं (संस्मरण), 7. सन्निवेश (विविधा), 8. दामाने बागवां (उर्दू)

1969 :

9. प्रस्तुति-2 (कविता), 10. बिम्ब-विम्ब चाँदनी (गीत), 11. प्रस्थिति-2 (कहानी), 12. अमर चूनड़ी (राजस्थानी कहानी), 13. यदि गांधी शिक्षक होते (निबन्ध), 14. गांधी-दर्शन और शिक्षा (शिक्षा-दर्शन), 15. सन्निवेश—दो (विविधा)

1970 :

16. सूखा गाँव (गीत), 17. खिड़की (कहानी), 18. कैसे भूलूं—दो (संस्मरण), 19. सन्निवेश—तीन (विविधा)

1971 :

20. प्रस्तुति-3 (कविता), 21. प्रस्थिति-3 (कहानी), 22 सन्निवेश-4 (विविधा)

1972 :

23. प्रस्तुति-4 (कविता), 24. प्रस्थिति-4 (कहानी), 25. सन्निवेश-5 (विविधा), 26. माळा (राजस्थानी विविधा)

1973 :

27. धूप के पंखेरू (कविता), 28. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी), 29. रेजगारी का रोजगार (एकांकी), 30. अस्तित्व की खोज (विविधा), 31. जूना बेलो : नुवां बेलो (राजस्थानी विविधा)

1974 :

32. रोशनी बाँट दो (कविता) सं० रामदेव आचार्य, 33. अपने आस पास (कहानी) सं० मणि मधुकर, 34. रङ्ग-रङ्ग बहुरङ्ग (एकाकी) सं० डॉ० राजानन्द, 35. आँधी अर आस्था व भगवान महावीर, (दो राजस्थानी उपन्यास) सं० यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', 36. वारखडो (राजस्थानी विविधा) स० वेद व्यास

1975 :

37. अपने से बाहर अपने में (कविता) स० मंगल सक्सेना, 38. एक और अन्तरिक्ष (कहानी) सं० डॉ० नवलकिशोर, 39. संभाळ (राज० कहानी) सं० विजयदान देथा, 40. स्वर्ग-भ्रष्ट (उपन्यास) ले० भगवती प्रसाद व्यास, सं० डॉ० रामदरश मिश्र, 41. विविधा स० डॉ० राजेन्द्र शर्मा

1976 :

42. इस बार (कविता) सं० नन्द चतुर्वेदी, 43. संकल्प स्वरों के (कविता) सं० हरीश भादानी, 44. बरगद की छाया (कहानी) स० डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, 45. चेहरों के बीच (कहानी व नाटक) सं० योगेन्द्र किसलय, 46. माध्यम (विविधा) सं० विश्वनाथ सनदेव

1977 :

47. सृजन के आयाम (निबन्ध) सं० डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, 48. क्यों (कहानी व लघु उपन्यास) सं० श्रवणकुमार, 49. चेते रा चितराम (राजस्थानी विविधा) सं० डॉ० नारायण सिंह भाटी, 50. समय के संदर्भ (कविता) सं० जुगमन्दिर तायल, 51. रङ्ग-वितान (नाटक) सं० सुधा राजहंस

1978 :

52. अंधेरे के नाम संधि-पत्र नहीं (कहानी संकलन) सं० हिमांशु जोशी 53. लखाण (राजस्थानी विविधा) स० रावत सारस्वत 54. रचेगा संगीत (कविता संकलन) नन्दकिशोर आचार्य, 55. दो गाँव (उपन्यास) ले० मुकारव खान आजाद, सं० डॉ० आदर्श सक्सेना 56. अभिव्यक्ति की तलाश (निबन्ध) सं० डॉ० रामगोपाल गोयल।

1979 :

57. एक कदम आगे (कहानी संकलन) सं० ममता कालिया, 58. लगभग जीवन (कविता संकलन) सं० लीलाधर जगूड़ी, 59. जीवन यात्रा का कोलाज/नं० ? (हिन्दी विविधा) स० डॉ० जगदीश जोशी, 60. कलम री कोरणी (राजस्थानी विविधा) सं० अन्नाराम सुदामा, 61. यह किताब बच्चों की (बाल साहित्य) सं० डॉ० हरिकृष्ण देवसरे। □

लीलाधर जगूड़ी

जन्म : १ जुलाई, १९४४—धगणगांव, टिहरी।

दस वर्ष की अवस्था में घर से भाग गया था। पूरे ग्यारह साल राजस्थान के अनेक नगरों और गांवों में भटका। संस्कृत विद्यालयों में ज्यादा रहा, टिका कहीं नहीं।

उसके बाद 'गढ़वाल राइफल' में सिपाही के रूप में भर्ती। दो वर्ष सेना में। आजकल उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा में अध्यापन। इससे अधिक दुखद स्थिति और क्या हो सकती है कि जवानी के शुरू में ही घर लौट आया।

रचनाएं

- शंखमुखी शिखरों पर (१९६४)
- नाटक जारी है (१९७२)
- इस यात्रा में (१९७४)
- रात अब भी मौजूद है (१९७६)
- बची हुई पृथ्वी (१९७७)

'रात अब भी मौजूद है' पर उ०प्र० सरकार के 'हिन्दी संस्थान' द्वारा तीन सहस्र का स्तरीय पुरस्कार सन् १९७७ में प्राप्त हुआ। रूसी, पोलिश, जर्मन और अंग्रेजी भाषाओं में कविताओं का स्वतंत्र अनुवाद हुआ है।